संस्कृति

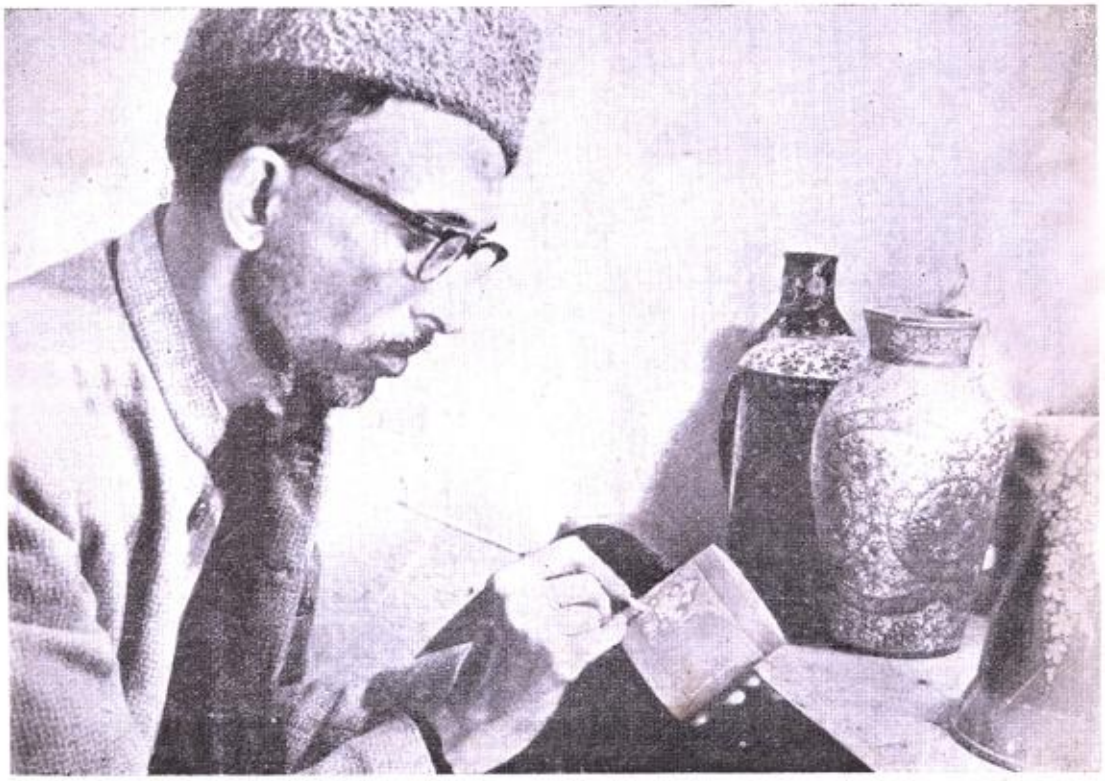

एक रुपया वर्ष 14 अंक 3

45

compiled and created by Bhartesh Mishra

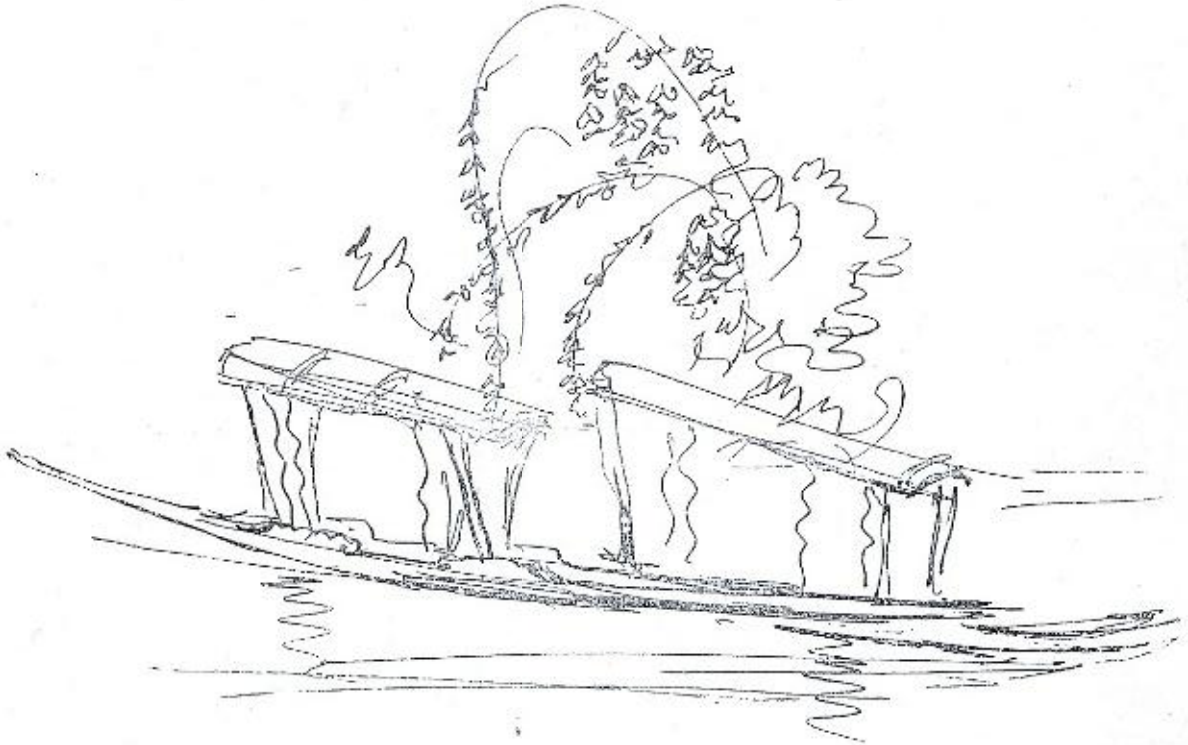

हाऊस बोट—एक रेखाचित्र

compiled and created by Bhartesh Mishra

वर्ष 14 अंक 3
शरद् 1894 शक

संस्कृति

प्राच्या नव्या विलसतुतरां संस्कृतिर्भारतीया

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि
त्रैमासिक पत्रिका

(ग्रीष्म, पावस, शरत् और हेमन्त में प्रकाशित)

सम्पादकीय मंडल

रामधारी सिंह 'दिनकर'
डा० नगेन्द्र
डा० प्राण नाथ चोपड़ा
कृष्ण गोपाल (सचिव)
वल्लभ दत्त (भूतपूर्व सचिव)

'संस्कृति' में प्रतिपादित विचार लेखकों के होते हैं, 'संस्कृति' के नहीं। अन्यत्र न छपी रचनाएं ही स्वीकृत की जाती हैं, पर फिर भी उन्हें 'संस्कृति' का उल्लेख करके उद्धृत किया जा सकता है। ऐसे प्रकाशन की एक प्रति संपादक के पास भेजी जानी चाहिए।

समीक्षा के लिए पुस्तकों की दो-दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं।

चन्दा मनीआर्डर से भेजा जाना चाहिए।

संपादक, 'संस्कृति'
शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय,
513-सी, शास्त्री भवन,
डा० राजेन्द्र प्रसाद मार्ग,
नई दिल्ली-1,
टेलीफोन नं० 383283

वार्षिक चन्दा : चार रुपए
एक प्रति : एक रुपया

विषय-सूची

संपादकीय 2

दृश्य

कश्मीरी कलाएं और दस्तकारी	3	जे० एस० मेंगी
कश्मीर की झीलें और उद्यान	7	एफ० एम० हसनैन
श्रीनगर के बदलते हुए हाऊस बोट	9	शर्ले बेरी आइजन बर्ग
कल्हण और उसकी राजतरंगिणी	13	माधवी यासीन
त्रिक शास्त्र की कहानी	27	प्रेमनाथ बजाज
महजूर : उनका काल एवं काव्य	32	गुलाम नबी फिराक
कश्मीर में रहस्यवाद	36	गुलाम रसूल नजकी
पहाड़ी लघु चित्र कला :	38	वी० आर० खजूरिया
कुमाऊंनी रामलीला	42	दयानन्द पन्त

सुख पृष्ठ-चित्र : पेपर मेशी कार्य में तल्लीन कारीगर

compiled and created by Bhartesh Mishra

सम्पादकीय

पाठकों को शायद स्मरण होगा कि संस्कृति का पिछला अंक जम्मू और कश्मीर से सम्बद्ध था। इस अंक में भी मुख्यत: लेख जम्मू और कश्मीर के बारे में ही हैं। जो विषय पिछले अंक में नहीं आ सके, वे इस अंक में दिये जा रहे हैं।

जे० एस० मेंगी के लेख 'कश्मीरी कलाएं और दस्तकारी' में विषय का विशद विवेचन हुआ है। माधवी यासीन ने 'कल्हण और उसकी राजतरंगिणी' के सम्बन्ध में समुचित प्रकाश डाला है। 'कश्मीर में रहस्यवाद' और 'त्रिक शास्त्र की कहानी' एक सफल रहस्योद्घाटन प्रस्तुत करता है। आधुनिक कश्मीरी साहित्य में महजूर का स्थान सर्वोपरि है। गुलाम नबी फिराक ने 'महजूर-उनके काल एवं काव्य' नामक अपने लेख में उनके बारे में एक असाधारण जानकारी प्रदान की है। भारत में कश्मीर की शोभा उसी प्रकार है जैसी कि योरुप में स्विट्जरलैण्ड की। कश्मीर वस्तुत: प्राकृतिक सौंदर्य से पूर्ण भारत का वह राज्य है जिसे देखते ही बनता है। श्री एफ० एम० हसनैन ने अपने लेख—"कश्मीर की झीलें और उद्यान" द्वारा भव्य चित्रण किया है। इतना ही नहीं, श्री शर्ले बेरी आइजन बर्ग का लेख— श्रीनगर के बदलते हुए हाऊस बोट" भी पाठकों के लिए विशेष आर्षक्ण है। प्रकृति की गोद में आनन्द उठाने वाले चित्रकार भी कश्मीर और जम्मू के प्रति सदैव आभार प्रकट करते रहे हैं। श्री बी० आर० खजूरिया ने "पहाड़ी लघु चित्रकला" लेख में चित्रकला से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का विशद विवेचन किया है। इस अंक में श्री दयानन्द पन्त ने अपने गंभीर शोध और व्यापक अध्ययन से "कुमाउंनी रामलीला" लेख में जो विचार व्यक्त किए हैं, उनसे इस विषय के अन्य पक्षों के अध्ययन में सहायता मिलेगी।

भूतपूर्व सचिव श्री वल्लभदत्त का जम्मू और कश्मीर से सम्बद्ध पिछले और इस अंक में सहयोग रहा है।

compiled and created by Bhartesh Mishra

कश्मीरी कलाएं और दस्तकारी

जे० एम० सेंगो

कश्मीर एशिया का स्विट्ज़रलैंड है जहां आलप्स पर्वत की भव्यता और पूर्व के मोहक आकर्षणों का अद्भुत संयोग हुआ है। कश्मीर की सुरम्य घाटी हिमाच्छादित ऊंची पर्वत श्रेणियों से घिरे विशाल हिमालय पर्वत के बीच में बसी हुई है।

कश्मीर अपने प्राकृतिक सौदर्य के अतिरिक्त युगों से हस्तकलाओं का केन्द्र भी रहा है। कश्मीर में हस्तकलाओं का प्रारम्भ सुलतान-जैन-उल-अब्दीन के शासन काल में हुआ था जो बडशाह अथवा महान राजा के नाम से प्रसिद्ध था और जिसने कश्मीर पर 1420 से 1470 ईसवी तक राज्य किया । अपनी प्रजा के जीवन स्तर और अर्थव्यवस्था में सुधार करने के उद्देश्य से उसने मध्य एशिया से कुशल कारीगरों को बुलवाया और उनकी सहायता से स्थानीय निवासियों को ऐसी अनेक हस्तकलाओं में प्रशिक्षित करवाया जो उस समय तक कश्मीर राज्य के लोगों के लिए सर्वथा अज्ञात थीं।

आज भी हमारे राज्य की अर्थव्यवस्था में हस्तकलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। कश्मीर का कलात्मक कौशल पेपर मैशी, काष्ठोत्कीर्णन, कसीदाकारी, गलीचों, नमदों, चेनस्टिच और गब्बों, नकली आभूषणों, चर्मकसीदाकारी और ऐसी ही अन्य दस्तकारियों में अभिव्यक्त हुआ है । कलाकृतियों के उत्पादन की विशेषता यह रही है कि अपने पारंपरिक स्वरूप का त्याग किए बिना ही सर्वदा वे कुछ नवीनता लिए रहती हैं।

पेपर मैशी

पेपर मैशी उन हस्तकलाओं में से एक है जिन्हें बडशाह ने समरकंद से बुलवाए गए विशेषज्ञों की सहायता से कश्मीर में पहले पहल प्रारम्भ किया था । इस दस्तकारी को कार-ई-कलमदानी अथवा कलमदान-कर्म भी कहा जाता है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रयोग सामान्यतः सामंतवादी शासकीय उच्चाधिकारियों के प्रयोग में आने वाले कलमदानों और छोटे डिब्बों की सजावट के लिए किया जाता था । किन्तु मुगलों के समय से इसका विस्तार पालकियों, छतों, पलंगों के सिराहनों, दरवाजों और खिड़कियों तक हो गया। इस का मुख्य रूप फूल पत्तीदार था । काफी बाद में पेपर मैशी का प्रयोग घरेलू उपयोग की अनेक वस्तुओं पर होने लगा।

अलंकरण कार्य के लिए आधार रूप रद्दी कागज़, रद्दी कपड़े, चावल की मांड़ और ताम्र सल्फेट से तैयार किया जाता है जिसे हाथ से कूट-कूट कर लुगदी तैयार की जाती है। फिर लकड़ी के सांचों पर आवश्यक मोटाई में इसकी परत लगाकर सुखा लिया जाता है। इस आधार रूप को सुखाने के बाद बराबर करके चमकाया जाता है और अंत में रंग-बिरंगे फूलों और अन्य सजावटी नमूनों से उसे चित्रित किया जाता है। चित्रकारी के लिए पहले जिन रंगों का प्रयोग किया जाता था वे पत्थरों और खनिज पदार्थों से बनाए जाते थे और वे धूमिल नहीं पड़ते थे। यद्यपि इस प्रकार का रंग अब मिल सकना कठिन है फिर भी अभी

compiled and created by Bhartesh Mishra

भी कारीगरों का एक ऐसा वर्ग है जो पैपर मैशी की वस्तुएं बनाने के लिए इसी नुस्खे का ही प्रयोग करते हैं। रंग-योजना को अधिक शानदार और दीर्घायु बनाने के लिए पृष्ठभूमि पर शुद्ध सोने और चांदी की परतें भी चढ़ाई जाती हैं अन्त में अलसी के तेल से बनाई गई स्थानीय वार्निश का लेप किया जाता है जिससे कि सीलन आदि से रक्षा की जा सके और इस लेप से पेपर मैशी की वस्तु में अंतिम परिष्कृति और चमक भी आ जाती है।

वस्तुओं पर डिज़ाइन बनाते समय कारीगर अपने सामने कोई चित्र नहीं रखता। वह अपनी कल्पना से डिज़ाइन बनाता है। सुन्दर, विविध, सूक्ष्म फूलदार डिजाइनों में चिनार का पत्ता, इंद्रधनुष, ईरानी गुलाब, बादाम और चेरी के फूल, ट्युलिप और संबुल होते हैं और पक्षी चित्रों-में कौड़िल्ला और बुलबुल का चित्रण अधिक होता है।

काष्ठोत्कीर्णन

कोष्ठोत्कीर्णन की कला स्थानीय मानव की अत्यंत आत्मीय आवश्यकताओं से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति इस बात से पूरी तरह हो जाती है कि प्रत्येक कश्मीरी घर में लकड़ी की चप्पलों का प्रयोग प्रचलित है। जो भी हो, तथ्य यही रह जाता है कि बडशाह के शासनकाल में काष्ठोत्कीर्णन कला का विकास हुआ। जम्मू और कश्मीर के महाराज प्रतापसिंह ने जब सम्राट जार्ज पंचम के दिल्ली दरबार के लिए लकड़ी की खुदाई किया गया द्वार भेंट किया तो इस दस्तकारी का देश और विदेशों में दोनों जगह बहुत प्रचार हुआ।

उत्कीर्णन कला में पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं की गहन अभिव्यक्ति हो सकती है और ये पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तु कश्मीर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करने वाले कलाकारों के मन पर इनका स्थायी प्रभाव पड़ता है और वे इन नमूनों का अति यथार्थता से चित्रण करते हैं। अपनी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति से संतुष्ट न होने वाले कश्मीरी कारीगरों ने इस कला को निपुणता से आगे बढ़ाया है और निकटवर्ती प्रभाव से समृद्ध किया है। उदाहरण के लिए काष्ठोत्कीर्णन में चीनी तुर्किस्तान से प्रसिद्ध व्याल (उड़ने वाले सर्प) और सस्सानिद परंपरा से जालीदार पुष्पोत्कीर्णन का सफल समावेश इस दस्तकारी के विकास में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। ये प्रभाव अलंकरण के देशी प्रकार की परम्परा में और चिनार के पत्ते, अंगूर के गुच्छे, इंद्रधनुषी बेलबूटे अथवा जल-वनस्पति जैसे स्थानीय नमूनों में पूरी तरह से आत्मसात और समाविष्ट हो गए हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि काष्ठोत्कीर्णन में जो चित्र उत्कीर्ण किए जाते हैं वे प्रायः पत्तियों के हैं और उनमें शायद ही कभी कोई फूल दीख पड़ता हो।

इस दस्तकारी से जो वस्तुएं बनाई जाती हैं अब उनमें छोटे-छोटे प्यालों से लेकर पलंग, सिगरेट दानों और मोमबत्ती आधारों से लेकर अलमारियों और पेटियों तक उपयोग और सजावट की विविध वस्तुएं शामिल हैं।

काष्ठोत्कीर्णन से बनी वस्तुओं के उत्पादन में मुख्य तौर पर कच्चे माल के रूप में अखरोट की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। यह लकड़ी 5,500 फुट से लेकर 7,500 फुट तक की ऊंचाई पर पाई जाती ह और अपनी रूचिकर तंतुरचना और सुन्दर वर्ण के कारण प्रसिद्ध है। पहले काष्ठोत्कीर्णन की वस्तुएं बनाने के लिए नैसर्गिक रूप से परिपक्व अखरोट की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था, किन्त अब चूंकि राज्य सरकार ने परिपक्व केन्द्र स्थापित कर दिया है अतः इस उद्योग में वैज्ञानिक तरीके से परिपक्व लकड़ी का प्रयोग किया जाने लगा है। उत्कीर्णन का कार्य वहीं पर तैयार किए गए विभिन्न आकार प्रकार के लोहे के उपकरणों से किया जाता है। उत्कीर्णन सतह को रेगमाल और सुलेमानी पत्थर से मसृण बनाया जाता है और अंत में उसे मोमी पालिश से परिष्कृत किया जाता है।

शालें और कसीदाकारी

जिसे फारसी शब्द शाल से अंग्रेजी का शब्द 'शावल' लिया गया है वह मूलतः पहरावे की किसी विशेष वस्तु का द्योतक न होकर बुने गए कपड़ों के एक वर्ग का द्योतक था।

इस दस्तकारी का आरम्भ कश्मीर में बडशाह के शासन काल में हुआ था जिसे इतिहासकारों ने कश्मीर का अकबर कहा है। कहा जाता है कि उसने इस कार्य में तुर्किस्तान के बुनकरों को लगाया था।

शालें दो प्रकार की होती थी; एक को कनिशाल कहा जाता था और दूसरी अमली शाल (सुई की कढ़ाई वाली) कहलाती थी।

कनिशाल की तकनीक के समानांतर तकनीक एशिया और मध्य एशिया में प्रचलित हैं। इसके अनुसार कपड़े के डिज़ाइन दार भाग के बानों में शटल के प्रयोग के बिना ही लकड़ी की चरखियों से ताना भरा जाता है। केवल बाने के धागों से ही नमूना तैयार होता है; ये धागे कपड़े की पूरी चौड़ाई में नहीं लगाए जाते, इन्हें पीछे की ओर बांध दिया जाता है और जहां जिस विशेष रंग की आवश्यकता होती है वहां उसका प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि परदे आदि का वस्त्र बुनने की प्रविधि से कश्मीरी प्रविधि इस दृष्टि से भिन्न है कि उसमें करघे को खड़ा न रख कर आड़ा रखा जाता है और उस का संचालन जरी का कपड़ा बुनने के ढंग का सा होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो अन्य महत्वपूर्ण नई दस्तकारी प्रारम्भ की गई, वह अमली अथवा सुई की कसीदाकारी वाली शाल की थी जिसे सादे बुने गए कपड़े पर पूरी कढ़ाई सुई से करके सजाया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले कश्मीर में इस प्रकार पूरी कढ़ाई के नमूने वाली शाल को कोई नहीं जानता था। इसका प्रवर्तन ख्वाजा युसूफ नामक एक अर्मेनियाई व्यक्ति के अनुरोध पर किया गया था जिसे कान्स्टेंटिनोपल (कस्तुन्तुनिया) की एक व्यापारिक फर्म के एजेंट के रूप में 1803 में कश्मीर भेजा गया था।

कश्मीरी शाल बुनने के लिए पारंपरिक रूप से पहाड़ी बकरी की 'कैंपरा हिर्कस' नामक मध्य एशियाई जाति से निकाली गई ऊन का प्रयोग किया जाता था। पश्चिम में यह पश्मीना अथवा कश्मीरी, जो कश्मीर की पुरानी वर्तनी Cashmere से लिया गया है, के नाम से प्रसिद्ध है।

विभिन्न आकार की शालों के अतिरिक्त यह कसीदाकारी

compiled and created by Bhartesh Mishra

पोशाकों के वस्त्रों, टाइयों, गुलूबंदों आदि पर भी की जाने लगी है। इस दस्तकारी के उद्योग में सबसे अधिक दस्तकार लगे हुए हैं। दस्तकारों की कुल संख्या लगभग 1,00,000 है।

नमदे

नमदा एक प्रकार का ऊनी कालीन है जो मोटी ऊन अथवा सूत मिली ऊन से बनाया जाता है। ऊन में सूत विभिन्न अनुपातों में मिलाया जाता है और इन अनुपातों जैसे 100% ऊन, 70% ऊन व 30% सूत, 50% ऊन व 50% सूत, 22% ऊन व 78% सूत इत्यादि के अनुसार ही नमदों को विभिन्न कोटियां और प्रकार होते हैं। मोटी ऊन को अथवा सूत और ऊन को, जो भी हो, बिना काते ही लिया जाता है और उसे उसकी मूल अवस्था में ही समतल फैलाया जाता है और उसके बाद उसे निरंतर बेलन फेर कर और दबा कर ऐसा रूप दिया जाता है कि सारे तंतु एक दूसरे में गुंथ जाते हैं और कालीन सा बन जाता है। इस प्रकार के ऊनी नमदे अलग-अलग आकार और माप के होते हैं। हालांकि गोल और अंडाकार नमदे भी बनाए जाते हैं किन्तु सबसे ज्यादा प्रचलित आयताकार नमदे हैं और आमतौर पर उनके मानक माप 2′×3′, 4′×6′ और 6′×9′ हैं, इनमें भी 4′×6′ सबसे अधिक प्रचलित हैं। प्रायः सफेद नमदों पर कसीदाकारी की जाती है परन्तु कभी-कभी रंगीन नमदों पर भी कसीदा किया जाता है। हाल ही में एप्लिक नमूने के पैच के काम वाले नमदे भी चल पड़े हैं। नमदों पर कसीदाकारी ऊनी धागे से की जाती है और कसीदे के नमूने आम तौर पर बेलबूटे दार होते हैं, कभी-कभी नमूने ज्यामितीय भी होते हैं।

नमदों की ऊन के प्रकार और उस पर प्रयोग किए जाने वाले धागे की मात्रा और प्रकार की विभिन्न विशिष्टियां और मानक निर्धारित करते हुए राज्य सरकार ने एक अधिनियम लागू किया है जिससे कोटि नियंत्रण किया गया है। जो नमदे नमदा कोटि नियंत्रण बोर्ड द्वारा निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं हैं उनका आयात तथा बिक्री निषिद्ध है।

बटे हुए धागे की कसीदाकारी

पर्दों आदि के वस्त्रों के लिए बटे हुए धागे की कसीदाकारी का प्रयोग बहुत ज्यादा किया जाता है। यह एक प्रकार की हुक की कसीदाकारी है जो क्रोशिए से मिलते-जुलते नोकीले हुक से की जाती है जिससे चेनस्टिच जैसी कढ़ाई होती है। मोटे धागे से यह कसीदा हाथ से बुने गए कपड़े पर किया जाता है। हुक की यह कसीदाकारी देशी प्रकार की नहीं हैं अपितु इसे कश्मीर में 13वीं शताब्दी में एशिया माइनर से आए दमिश्क के व्यापारी लाए थे। इस कला की जड़ें कश्मीर में मजबूत हो गई हैं और इसका विकास इस हद तक हो गया है कि कुछ क्षेत्रों में तो वस्त्रों और पोशाकों पर की जाने वाली सुई की कसीदाकारी के स्थान पर इसी का प्रयोग किया जाता है।

बटे हुए धागे की कढ़ाई वाली चीजों की संयुक्त राज्य अमरीका, संयुक्त राष्ट्र और कुछ योरूपीय देशों में बहुत मांग है।

गलीचे

भारत में गलीचे बनाने की कला का प्रवर्तन सम्राट अकबर ने 1556 ईसवी में सिंहासनारूढ़ होने पर किया था। किन्तु कश्मीर में यह कला बहुत पहले से ही विद्यमान थी।

जहां तक कश्मीर में गलीचा बुनने की कला के विकास का संबंध है, यह उल्लेखनीय है कि स्थायी रूप से स्थापित होने के पूर्व कई अवसरों पर इसमें बाधा पहुंची है।

कश्मीर में गलीचा निर्माण की नींव रखने वाला पहला व्यक्ति बडशाह था और पहले-पहल उसके शासन काल में ही आकर्षक नमूनों के गलीचों का निर्माण किया गया था। उसकी मृत्यु के बाद इस उद्योग का ह्रास हो गया।

कश्मीर के एक राज्यपाल अहमद बेग खान (1614—19) के समय में अखून रहनुमा नामक एक व्यक्ति हज से लौटते समय फारस गए और वहां उन्होंने गलीचा बुनने की कला सीखी। कश्मीर में गलीचे बनाने का काम प्रारम्भ करने के उद्देश्य से वे अपने साथ औज़ार भी लाए। उन्होंने कुछ लोगों को इस कला में प्रशिक्षण दिया और इस प्रकार कश्मीर में फिर से गलीचा बुनने का प्रारम्भ हुआ। कश्मीर में इस कला को पुनर्जीवित करने में अखून रहनुमा ने जो उत्साह दिखाया था उसे आज भी याद किया जाता है।

कश्मीर में गलीचा निर्माण कला फारस में प्रचलित गलीचा निर्माण कला से मिलती-जुलती ही है, अंतर केवल इतना ही है कि जहां फारस में यह कार्य स्त्रियां करती हैं, वहां कश्मीर में इसे केवल पुरुष ही करते हैं।

प्रारम्भ में बुनाकार गलीचों के नमूने अपने मन से बनाया करते थे और उनमें वही नमूना तैयार होता था जो करघे पर प्रकट होता था। ऐसे नमूनों में कोई सममिति अथवा रंग-योजना नहीं होती थी। बाद में इसमें सुधार किया गया और नमूनों के रंगीन रेखा चित्र बनाए जाने लगे जिनके अनुसार गलीचा बनाया जाता था।

जो रेशमी गलीचे कश्मीर में पारंपरिक रूप से प्रचलित थे, किन्तु गलीचा उद्योग के ह्रास के कारण विलुप्त हो गये थे, हाल ही में, वे फिर से प्रचलित हो गए। ये गलीचे ताने व बाने में सूत व ऊन के स्थान पर रेशमी धागे के प्रयोग के कारण भी लोकप्रिय हैं।

जिन रेशमी गलीचों के निर्माण में किसी समय ईरान का एकाधिकार रहा था, अब फिर से पुनर्जीवित उद्योग के रूप में उनका विकास हो रहा है। इस बात का पूरा पूरा श्रेय कश्मीरी कौशल को है कि गलीचा बुनने वालों ने न केवल हूबहु वैसे ही नमूनों और प्रकारों में गलीचे तैयार करने में सफलता प्राप्त की है जैसे कि फारस में बनाए जाते थे अपितु इन गलीचों ने निर्यात बाज़ार और वृहत संभावनाएं भी स्थापित कर ली हैं।

इस कला में हाल ही में जो अभिनव परिवर्तन किया गया है वह है प्रसिद्ध कश्मीरी शालों के अमली नमूनों का गलीचों में प्रयोग। इस प्रकार का एक अमली गलीचा भारत सरकार की ओर से महामहिम महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय को भेंट किया गया था।

200 व इससे अधिक गाठों की कोटि के पारंपरिक प्राच्य नमूनों में हाथ से बने ऊनी गलीचों के उत्पाद का स्थान निर्यात संभावना के साथ सबसे ऊंचा है। 90 लाख मूल्य के गलीचे बनाने वाले लगभग 20 प्रतिष्ठान श्रीनगर में हैं। इसके अतिरिक्त

compiled and created by Bhartesh Mishra

पूरे शहर में अलग-अलग बुनकारों के घरों में भी करघे हैं जिनका उत्पादन 10 लाख रुपए के लगभग होता है। अनुमान लगाया गया है कि कुल उत्पादन का 40% निर्यात किया जाता है।

चेनस्टिच के गलीचे तथा गब्बे

चेनस्टिच के गलीचे हाल ही में लोकप्रिय हो गए हैं क्योंकि वे सामान्यतया आम आदमी की पहुंच से परे के महंगे गलीचों की तुलना में कम महंगे किन्तु उतने ही टिकाऊ स्थानापन्न हैं। आम तौर पर मुलायम जूट के टाट पर इतनी पास-पास कढ़ाई की जाती है कि टाट जरा भी दिखाई नहीं देता और यह कढ़ाई उमदा ऊनी धागे से तथा मुख्यतया गलीचों के ही नमूनों में ही की जाती है। साबुन से धोने के बाद इस गलीचे के नीचे बढ़िया प्रकार के पास-पास बुने गए और मजबूत जूट के टाट का अस्तर लगाया जाता है।

गलीचों का एक अन्य प्रकार, जिसे आम तौर पर गब्बा कहा जाता है, पुराने कंबलों पर बनाया जाता है जिनकी मरम्मत करके उन्हें काले गहरे चाकलटी अथवा गहरे नील जैसे गहरे रंगों में रंग लिया जाता है। इस प्रकार के गलीचों का पूरा कपड़ा कढ़ाई से नहीं ढका जाता अपितु सामान्यतः नमूना रेखाकार होता है और कंबल की काली पृष्ठभूमि दिखाई देती रहती है।

इस उद्योग में लगे लगभग 300 दस्तकार लगभग 15,000 अमरीकी डालर के मूल्य के माल का निर्माण करते हैं जिसमें से 85% माल यू० के० तथा संयुक्त राज्य अमरीका को निर्यात किया जाता है।

फिरोजे के आभूषण

कश्मीर में रंग-बिरंगे, बहुमूल्य और अर्ध-बहुमूल्य पत्थर बहुतायत से मिलते हैं और संगतराशी की कला के विकास के लिए भी कश्मीर अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करता रहा है; किन्तु अपनी सहज अनगढ़ता और हस्तकलाओं को उनका रूप देने वाले लोक गुण के कारण चटक, चमकीले, फोराजी, नीले पत्थर का प्रयोग आभूषणों में बहुत लोकप्रिय हो गया। समय के साथ-साथ फिरोजा जड़े आभूषणों और गहनों की मांग विशेष रूप से योरुपीय देशों में निरंतर बढ़ती गई। परिणामस्वरूप, एक पूरे उद्योग का ही विकास हो गया और कश्मीर तथा किशापोरा नामक मध्य एशियाई प्रदेश के बीच बृहत् व्यापार शुरू हो गया। जहां तक असली फिरोजों की पूर्ति का सवाल है किशापोरा इस उद्योग की आवश्यकता जुटाने में पूरी तरह से लगा है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, अमरीकी बाजार की मांगों के परिणामस्वरूप, इस उद्योग को सर्वाधिक प्रोत्साहन मिला और यह दस्तकारी केवल आभूषणों तक ही सीमित नहीं रही अपितु फूलदान, प्याले, तश्तरियां, पाउडर सैट आदि जैसी बहुत सी सजावटी तथा उपयोगी वस्तुएं भी बनाई जाने लगीं।

मूल वस्तु पीतल, चांदी अथवा सफेद धातु की बनी होती है जिस पर कश्मीर में ही बनाई गई काली लाक्षा की तह बिछाई जाती है। पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े एक दूसरे से सटा कर लाक्षा में भरे जाते हैं, बीच में छूटे स्थानों को काली की गई मधु मोम से रगड़ कर भर दिया जाता है। नोकीले सिरों और मोम तथा पत्थर के अवांछित अंशों को दूर करने के लिए हाथ से चलाई जाने वाली देशी सान पर सतह को बराबर किया जाता है जिससे काली लाक्षा से घिरे हुए, जड़े गए फिरोजों की सतह चमकने लगती है।

बाद में कश्मीरी बाजार में असली फिरोजों की दुर्लभता होने पर उसका स्थान सफेद कोमल पत्थर ने ले लिया जिसे फिरोजी-नीले रंग में रंग लिया जाता है। रंगने के लिए, पत्थर को पहले भट्टी में पकाने की प्रक्रिया से अवशोषी बनाया जाता है। राज्य सरकार द्वारा संचालित "स्कूल आफ डिज़ाइन्स" ने रंगने की प्रक्रिया में बहुत सुधार किया है जिससे कि रंग पक्का और जलसह रहे, और रंगे जाने के बाद एक परिरक्षी लगाने की व्यवस्था भी की गई है।

नकली आभूषण (कास्ट्यूम ज्वेलरी)

आभूषणों के पुराने प्राचीन नमूनों को चांदी तथा सफेद धातु में उतारा जाता है। इन आभूषणों में बहुमूल्य और अर्ध-बहुमूल्य पत्थर जड़े जाते हैं। इस प्रकार के आभूषणों की बहुत मांग है और विश्व के विभिन्न भागों में उनका निर्यात किया जाता है।

रूपांतर : कुसुम बंसल

compiled and created by Bhartesh Mishra

कश्मीर की झीलें और उद्यान

एफ० एम० हसनैन

कश्मीर प्रकृति द्वारा निर्मित एक मनोहर उद्यान का रूप धारण किए हुए है। मनुष्य को इसे और सजाने संवारने की जरूरत नहीं है। वहां अनगिनत छोटे-छोटे नदी-नाले हैं जो बर्फ से ढके पहाड़ों से निकलते हैं। वहां फलदार वृक्षों और सुन्दर-सुन्दर फूलों से भरपूर चरागाहें और कई छोटी-छोटी झीलें और सोते हैं।

कश्मीर घाटी ताजे पानी की झीलों और स्रोतों के लिए प्रसिद्ध है। नीलमाता के अनुसार कश्मीर घाटी एक बहुत बड़ी झील थी जो चारों ओर बर्फ से ढके ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से घिरी हुई थी। ज्वालामुखी की क्रिया के कारण कदनयार और बारामूला के स्थानों पर इस झील का पानी बह निकला जिससे घाटी जल-रहित हो गई। अब डल झील, वुलर झील, मानसबल झील और अनेक जल-स्रोतों के रूप में उस बहुत बड़ी झील का अवशेषमात्र रह गया है।

डल और वुलर झीलें

श्रीनगर की डल झील सारे संसार में प्रसिद्ध है। उसके बाद आती है वुलर झील जो देश भर में ताजे पानी की सबसे बड़ी झील है। यह लगभग बारह मील लम्बी और पांच मील चौड़ी है।

जहां वुलर झील है, वहां कभी एक प्राचीन शहर बसा हुआ था जो ज्वालामुखी की क्रिया के कारण जलमग्न हो गया था। सुलतान जैनुल-अबीदीन ने जलमग्न टापुओं में से एक टापू को जलमुक्त करने का निश्चय किया। उसने उस स्थान पर पत्थर डालने का आदेश दिया और बहुत प्रयास करने के पश्चात् वह उस टापू को पानी के स्तर से ऊपर कराने में सफल हो पाया। यह टापू जैनदेनम्ब के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और वहां उसने एक महल बनवाया। इस लेख के लेखक को एक पत्थर का टुकड़ा मिला है जो इस महल की नींव रखने का स्मारक है। इस पर हिजरी सन 847 की तारीख पड़ी है।

डल झील श्रीनगर के नजदीक है। यह तीन ओर से पहाड़ों से घिरी हुई है। यह लगभग चार मील लम्बी और दो मील चौड़ी है। यह दो झीलों में बंट गई है। तटबंधों, तैरते हुए छोटे-छोटे बगीचों और सब्जी के खेतों के कारण इसके अलग-अलग टुकड़े हो गए हैं। उनके बीच बजरे जड़े हुए से प्रतीत होते हैं। झील में शिकारी इधर-उधर घूमते हैं। रूपलंक और सोनलंक नाम के दो द्वीप इस झील की शोभा को बढ़ाते हैं।

मानसबल झील देश की सबसे गहरी झील है। यह झील श्रीनगर से पन्द्रह मील की दूरी पर गंडेरबल के निकट स्थित है। पर्यटक इस झील को इसके हरे रंग के पानी तथा शान्त वातावरण के कारण बहुत पसन्द करते हैं।

compiled and created by Bhartesh Mishra

गंगाबल और शेषनाग

उक्त झीलों के अलावा कश्मीर घाटी में बहुत सी पहाड़ी झीलें हैं जो हिमनदियों की क्रिया के कारण बनी हैं। गंगाबल झील एक ऐसी ही झील है जो हरमुख पर्वतमाला में है। यह समुद्र तल से 11,800 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। परिपंजाल पर्वतमाला में कोनसरनाग झील है जहाँ हिमनदियों से पानी आता है। यह समुद्र तल से लगभग 13,000 फुट की ऊंचाई पर है। कोलहाई पर्वतमाला में शेषनाग झील है। यह लगभग पांच मील लम्बी है और समुद्र तल से 14,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है।

श्रीनगर के पास अंचर झील में पेड़-पौधों, जंगली पक्षियों और मुरगाबियों का बाहुल्य है।

प्राकृतिक उद्यान

प्राचीन काल से कश्मीरी लोग फलों और फूलों के प्रेमी रहे हैं और उनकी काश्त करते रहे हैं। अतः उन्होंने स्रोतों और झीलों के आस-पास के क्षेत्र को प्राकृतिक उद्यानों के रूप में इस्तेमाल किया है। कश्मीर में पुराने ढंग के उद्यानों की कल्पना सबसे पहले बौद्धों ने की थी। उद्यान लगाने की यह परम्परा पहली और पांचवीं शताब्दी तक मध्य एशिया, चीन और जापान तक पहुंच गयी। कश्मीर घाटी में सुन्दर बाग लगवाने का श्रेय शाहभीर शासकों को है।

बाग लगाने की बौद्धों की परम्परा को कश्मीरी ऋषियों ने आगे बढ़ाया। ये कश्मीरी ऋषि सूफी भी कहलाते हैं। जहां भी वे ठहरते थे, वहां वे सदा छायादार वृक्ष लगवाते थे।

कश्मीर में बाग लगवाने की परम्परा सुल्तान शासकों से आरम्भ हुई। उन्होंने बहुत से बाग लगवाए। सुल्तान ज़ैनबीदीन और सुल्तान यूसुफशाह चक ने घाटी में बहुत से बाग लगवाए।

मुगल शासक उद्यानों के प्रेमी थे। वे मध्य एशिया और फ़ारस से बागों के लगाने की परम्परा अपने साथ लाए और उसका प्रयोग करने के लिए उन्होंने कश्मीर घाटी को उपयुक्त पाया। मुगल शासकों द्वारा लगवाए गए अधिकतर बाग अब नहीं रहे। लेकिन उनमें से कुछ जैसे निशात, शालीमार, चश्मा-शाही, अच्छाबल और वेरीनाग जैसे बाग अच्छी तरह परिरक्षित हैं।

फलों के पेड़ और फूल तो कश्मीर में प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं, किन्तु बागों में फव्वारों और जल-प्रपातों की व्यवस्था मुगल शासकों ने की।

निशात और शालीमार

निशात बाग अर्थात् 'विलास उपवन' सन् 1634 में मलिका नूरजहां के सबसे बड़े भाई आसफ़ जाह खां ने लगवाया था। डल झील के किनारे बना हुआ यह बाग एक भव्य और दर्शनीय है। विलासप्रिय लोगों के लिए यह बाग एक विहारस्थली है। पहले इस बाग में 12 सीढ़ीनुमा मंजिलें थीं जो राशिचक्र की बारह राशियों की प्रतीक थीं जो एक के बाद एक ऊंचे होते जाते थे। किन्तु अब केवल दस चबूतरे देखने को मिलते हैं। सारे बाग के बीचों-बीच छोटे-छोटे तलाबों की एक पंक्ति है और विभिन्न प्रपातों का रूप धर कर एक जलधारा बहती रहती है। प्रत्येक में फव्वारे चलते हैं। पत्थर का बना एक फव्वारा अपने मौलिक रूप में अब भी मिलता है।

यहां दो सुन्दर मंडप हैं। नीचे वाले मंडप की नींव पत्थर की है और ऊपर से यह लकड़ी और पलस्तर का बना हुआ है। दूसरा मंडप बड़ा है और बहुत से फव्वारों से घिरा हुआ है। नरम-नरम और हरी-हरी घास की पृष्ठ भूमि में रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियां बड़ी मनमोहक लगती हैं। चिनार के बड़े-बड़े वृक्षों ने इस बाग को और भी सुन्दर बना दिया है। हर समय सुंदर लगने वाले इस बाग में थोड़ी देर भ्रमण करने के पश्चात् एक प्रकार के आह्लाद का अनुभव होने लगता है।

तुर्की भाषा में शालीमार बाग का अर्थ शांति एवं विश्राम-स्थल है। इस बाग को मुगल बादशाह जहांगीर ने लगवाया था। 1634 ई० में जफर खां ने इस बाग में और पेड़-पौधे आदि लगवाए। मुगल बादशाह द्वारा कश्मीर में लगवाए गए बागों में से शालीमार बाग सबसे सुन्दर समझा जाता है। मूल रूप में यह बाग तीन अहातों में बंटा हुआ था जिनके नाम इस प्रकार थे:—दीवाने-खास, दीवाने-आम, बादशाह का निजी कक्ष। बाग की लंबाई के साथ-साथ एक नहर चली गई है जिसमें कई जल-प्रपात और छोटे-छोटे तालाब हैं जिनमें फव्वारे चलते हैं। इसके हरे भरे लान रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियां और छायादार चिनार के वृक्षों से ढके हुए हैं। दीवाने-आम और दीवाने-खास में बने हुए मंडप नष्ट हो चुके हैं, लेकिन तीसरे अहाते में बादशाह द्वारा काले पत्थर का मंडप अभी भी मौजूद है। इसके चारों ओर जल-प्रपात और फव्वारे हैं। इसके भीतरी भाग पर चित्रकारी की हुई थी और कक्ष की दीवारों पर निम्नलिखित प्रख्यात अभिलेख उत्कीर्ण था :

'अगर फिरदौस बररूए जमीं अस्त,
हमीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्त।

(यदि संसार में स्वर्ग हो सकता है तो यहीं है, यहीं है यहीं है)

शासकों के हाथों इस बाग को बहुत क्षति पहुंची है। इसके मंडपों में बहुमूल्य हीरे जवाहरात जड़े हुए थे जो लूट लिए गए। अभी 18वीं सदी में कश्मीर के डोगरा राज्यपाल, वजीर पुन्नो ने इस बाग से दो मन से भी अधिक हीरे-जवाहरात चुरा लिए थे। मलिका नूरजहां गर्मियों में इस बाग में आकर रहती थीं। इस बाग का वातावरण शांत है जिससे मन को सांत्वना मिलती है। कुछ लोगों को इस बाग का वातावरण विषाद-पूर्ण लगता है।

अच्छाबल और बेरीनाग

कश्मीर में अच्छाबल में शायद सबसे बड़ा बाग लगवाने के लिए यह उत्तम स्थान है। शाहजहां की बेटी जहांआरा बगम ने इस स्थान को बाग तथा हम्माम के लिए इस्तेमाल किया। यह झरना पहाड़ों की तराई से फूटता है जो कि देवदार के घने जंगल से ढका हुआ है। झरने का पानी बाग में से होकर जाता है। मण्डप और फव्वारे अब नहीं रहे, पर जहांआरा बेगम द्वारा बनाया हुआ हम्माम अब भी मौजूद है। उसने बहुत से बाग भी लगवाए थे। उसकी आज्ञा से बनवाए गए ऐश बाग, नूरबाग आदि तो अब नहीं रहे लेकिन श्रीनगर के आस-पास और डल झील के इर्द-गिर्द इन बागों

(शेष पृष्ठ 16 पर)

compiled and created by Bhartesh Mishra

श्रीनगर के बदलते हुए हाऊस बोट

शर्ले बेरी आइजक खाँ

हाऊस बोट तो संसार के कुछ अन्य भागों में भी हैं परन्तु श्रीनगर के हाऊस बोट लगभग हर तरह से अनूठे हैं। अन्य भागों के हाऊस बोट से समानता केवल इस बात में है कि लोगों के लिए स्थायी या अस्थायी घरों का काम ये हाऊस बोट भी देते हैं। श्रीनगर के हाऊस बोट के विकास क्रम की खोज करना वास्तव में एक चित्ताकर्षक कार्य है। संस्कृति परिवर्तन का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए इन हाऊस बोट के नाविकों के "दो नावों पर पैर" जमाने वाली कहावत खरी उतरती है। नाविक अपना एक पैर तो अपने डूंगे में (वह किश्ती जिसमें वह अपने परिवार सहित रहता है) रखता है और जिस पर पूर्णतः देशी जीवन दृष्टिगोचर होता है तथा उसका दूसरा पैर पाश्चात्य ढंग के हाऊस बोट पर होता है।

11वीं शताब्दी में लिखी गई कल्हण की 'राजतरंगिणी' संस्कृत भाषा में लिखा गया कश्मीर का इतिहास है। प्राचीन काल की नदियों के किनारों के प्राचीन वृक्षों से बंधी किश्तियों के रस्सों के चिह्नों और इन किश्तियों की देखभाल में लगे व्यक्तियों का उल्लेख इस ग्रंथ में है (राजतरंगिणी भाग 5, श्लोक 101)। ये घटनाएं 9वीं शताब्दी की हैं। संभवतः एक लम्बे समय से कश्मीर की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग, श्रीनगर में और उसके आस-पास की अनेक झीलों, नदियों और नहरों में किश्तियों पर रहता था। सभी नौकाएं चाहे वे बड़े जलयान हों, मछली पकड़ने की किश्तियां हों, पार जाने के और किराए पर चलाने के छोटे शिकारे हों, डूंगे हों या आधुनिक विशाल शिकारे, सभी देवदार की लकड़ी से बनी होती है। इनका निचला भाग समतल होता है और परम्परागत तरीकों से इन्हें बांसों, छोटे चप्पुओं या मोटी रस्सियों द्वारा चलाया जाता है।

प्राचीन डूंगे

प्राचीन डूंगों को भी हाऊस बोट कहा जा सकता है क्योंकि डूंगों का अधिकांश भाग प्रमुख रूप से रहने के मकान का काम देता था और यह बात गौण थी कि डूंगों का प्रयोग यातायात के साधन के रूप में भी हो सकता था और ऐसा अक्सर होता भी था। परन्तु [illegible] विषय के संदर्भ में तो "हाऊस बोट" शब्द का प्रयोग पूर्णतः

compiled and created by Bhartesh Mishra

बीसवीं शताब्दी के उस बड़े जलयान के लिए किया जा रहा है जिसे गैर कश्मीरी लोग घरों की तरह किराये पर लेते हैं और उनकी सेवा व देखभाल नाविक करते हैं जो स्वयं डूंगों में रहते हैं और जिन्हें आगे हाऊसबोट वाले कहा गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही ब्रितानी सिविल और सैनिक कर्मचारियों, यात्रियों, पर्यटकों, कलाकारों और खिलाड़ियों की भेंट बारामूला शहर में असंख्य डूंगा नाविकों से होती रहती थी और प्रत्येक नाविक की यह उत्कंठा रहती थी कि पर्यटक उसी की नाव भाड़े पर लें। चप्पू चलाने, लग्गा कूदने अथवा नाव को खींचने के लिए कर्मीदल के रूप में नाविक के परिवार सहित डूंगे उथले जलमार्गों पर भी, अतिथि के निर्देशानुसार यात्रा के लिए अधिक उपयुक्त होते थे (और हैं)। अठारहवीं शताब्दी के आठवें दशक में चार व्यक्तियों के कर्मीदल वाले एक डूंगे में किराए के लिए पन्द्रह सरकारी रुपये दिए जाते थे। औरतें और 12 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को ही कर्मीदल का समर्थांग सदस्य माना जाता था। उन दिनों डूंगे 50 से 60 फुट तक लम्बे तथा मध्य भाग में 6 से 9 फुट तक चौड़े होते थे। इनकी दीवारें और छतें सरकण्डे की चटाई से बनी होती थी, छत पर चटाई की कई तहें होती थीं, दीवारों की चटाई इस ढंग से लगाई जाती थी कि उसे लपेटने पर एक तरह की खिड़की खुल जाती थी और लकड़ी की दीवारों से अलग-अलग तीन छोटे छोटे कमरे बन जाते थे। आगे पीछे दोनों ओर नुकीले डेक बने होते थे और हटाए जा सकने वाले फर्श के तख्तों पर सामान रखने की काफी जगह होती थी। जब अतिथि बाहर होते तो डूंगे का छत वाला अधिकांश भाग उन के लिए सुरक्षित रहता था और जब तक नाव का मालिक एक अतिरिक्त डूंगा नाव के पीछे न रखे तो समस्त कर्मीदल (नाव का मालिक, उसका परिवार और कभी-कभी किराए के लोग भी) पीछे के उसी थोड़े से स्थान पर रहते और खाना बनाते थे। पहले अतिथि लोग अपना निजी सामान और नौकर अपने साथ लाते थे। डूंगे का महत्व उनके लिए एक चलते फिरते तम्बू से अधिक नहीं था। धीरे-धीरे व्यावसायिक प्रवृत्ति के नाविकों ने यात्रियों को अधिक से अधिक सुविधाएं देनी शुरू कीं जैसे :—स्नान टब, खपच्ची और किरमिच (कैन्वेस) की बनी कुर्सियां, खपच्ची से बनी चाय की मेजें और चीनी के बर्तन। यद्यपि यात्री अपना सफरी पलंग, चांदी के बर्तन, छालटी (क्षौम), खाना पकाने के बर्तन और अन्य आरामदायक वस्तुएं अपने साथ लाते रहे। तब डूंगों का विकास छोटे जलयान से 85 फुट लम्बी और मध्य भाग में 8 से 9 फुट चौड़ी अपेक्षाकृत विस्तृत किश्ती में हो गया। तीन छोटे कमरों के स्थान पर पांच बड़े आकार के कमरे बनाने होंगे, सरकण्डे की चटाई से बनी छत और दीवारों, मजबूत लकड़ी के पटरे से बनी दीवारों में बदल गईं। विदेशी पर्यटकों के रहने के लिए चलते फिरते मकानों के रूप में डूंगा का कार्य आधुनिक ढंग के हाऊस बोट की नवीनता के रूप में परिवर्तित हो गया है। खाना बनाने तथा रात भर के आराम के लिए जहां शिकारे इतने उपयोगी और आरामदेह नहीं होते, वहां लम्बी सैर के लिए अब भी डूंगे किराए पर उपलब्ध हो जाते हैं और आधुनिक हाऊस बोट अधिक भारी धीमी गति से चलने वाली तथा खर्चीले और अधिक सतही और तंग जल-मार्गों के मुकाबले में काफी बड़ी होती है। आज कल औसतन यात्री जो एक स्थान पर चाहते हैं, रहने के मकान के रूप में डूंगा की अपेक्षा हाऊस बोट किराये पर लेना अधिक पसंद करते हैं। कई डूंगे अब आधुनिक हाऊस बोट से जुड़े "खाना तैयार करने की नावें" का काम देते हैं। किन्तु अनेक ऐसे स्वतन्त्र डूंगे भी हैं जो नाविकों के घर होने के साथ साथ यात्रियों या माल को लाने ले जाने के लिए किराये पर भी उपलब्ध हो जाते हैं। थल और जलवासी दोनों ही कभी-कभी उत्सवों के मौके पर डूंगे किराये पर लेते हैं। धीरे-धीरे और आनन्द से जल पर बहने के लिए नौका पर अक्सर एक कश्मीरी लोक संगीत-कारों का समूह और फारसी भोज का आयोजन भी होता है या फिर दूसरी ओर डूंगे में बैठी विवाह की टोली को मोटर बोट द्रुत गति से खींचती है। अर्ध शताब्दी में प्राचीन ढंग से डूंगों के साथ साथ विकासवादी परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करने वाले डूंगों का प्रचलन भी श्रीनगर में देखा जा सकता था।

डूंगों से हाऊस बोट तक

जिस हाऊस बोट को आज हम जानते हैं उस हाऊस बोट के रूप में डूंगे के वास्तविक परिवर्तन की सत्य कथा "श्री पी० एन० के० बम्जई" की पुस्तक 'कश्मीर का इतिहास' (देहली मैट्रोपोलिटन पुस्तक कम्पनी' 1962) के पृ० 637 और 638 पर सुन्दर ढंग से की गई है :—

यह आश्चर्य जनक बात है कि प्राचीन काल में कश्मीरी पंडितों की जिस जाति का संबंध कभी नाव निर्माण या नाविक व्यवसाय से नहीं रहा, उसी के एक सदस्य को सब से पहला हाऊस बोट बनाने का श्रेय है। पंडित नारायण दास एक उच्च घराने से संबंध रखते थे और उन प्रथम पांच कश्मीरियों में से एक थे जिन्होंने 1818 में प्रसिद्ध कश्मीर मिशन स्कूल के संस्थापक श्रद्धेय डाक्टर से अंग्रेजी सीखी थी। पंडित पिछले के परम्परागत व्यवसाय में रुचि न होने के कारण इन्होंने स्कूल छोड़ने के बाद योरुपीयन पर्यटकों की भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक छोटी सी दुकान खोल ली। किन्तु दुर्भाग्य से इनकी दुकान जल गई। अन्य उपयुक्त दुकान प्राप्त करना कठिन जानकर इन्होंने आग में जलने से बच गई शेष वस्तुओं को वहां से हटा कर एक डूंगे में रख लिया। उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि डूंगा अधिक बेहतर दुकान साबित हुआ क्योंकि इसे यात्रियों के लिए किसी सुविधाजनक और केन्द्रीय स्थान पर बांधा जा सकता था। परन्तु वर्षा और हिमपात से जब उसका सामान नष्ट होने लगा तो उन्होंने यह विचार किया कि डूंगे भी चटाई से बनी छत और दीवारों पर चटाई के स्थान पर तख्ते लगाने चाहियें। जब इस प्रकार की पहली नौका बन कर तैयार हुई और जल पर तैरी तो एक अधिकारी ने सनक में आकर इसे अच्छे दामों पर खरीद लिया। पंडित नारायण दास ने अनुभव किया कि योरुपीयन स्टोर चलाने की अपेक्षा नाव निर्माण का यह व्यवसाय अधिक लाभदायक है और शीघ्र ही वह कश्मीर का प्रमुख नाव निर्माता बन गया। उन के अहाते असंख्य सुन्दर व प्रसिद्ध नावें बनती चली गईं। बाद में कर्नल आर० सारटोरियस, बी० सी०, सर आर० हार्ट, बार्ट और मिस्टर मार्टन बैनार्ड ने उन की इस योजना को विकसित किया।

नया हाऊस बोट

आधुनिक ढंग के हाऊस बोट की वास्तविक आवश्यकता दो कारणों से हुई : (1) कश्मीर में आने वाले योरुपीयन (ब्रितानी अधिकारी और छुट्टियां बिताने आए यात्री) लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी और (2) कश्मीर को अनाक्रांत प्राप्त ब्रितानी अधि-

compiled and created by Bhartesh Mishra

कारियों की आवास कालोनी बनने से रोकने के उद्देश्य से महाराजा की सरकार ने यह निर्णय ले लिया कि किसी भी गैर कश्मीरी को कश्मीर में भूमि लेने या मकान बनाने की अनुमति न दी जाए। तब जो लोग कश्मीर में रहना चाहते थे और किराये का घर लेने या सरकारी आरामगृहों में स्थान पाने में असमर्थ थे और जो होटल में नहीं रहना चाहते थे, उनके लिए तर्कसंगत हल यही था कि स्थानीय जनसंख्या में से कई लोगों द्वारा स्थापित उदाहरण का अनुसरण करें और जल पर रहें।

1895 में कैनार्ड द्वारा बनाया गया हाऊस बोट सब से अधिक बड़े डूंगे से भी अधिक बड़ा ही नहीं था अपितु इसका फर्श भी पहली बार डूंगा के फर्श से भिन्न खोल में अधिक गहरा था। निर्माण की अधिक कठिन प्रणाली का प्रयोग इसलिए किया गया ताकि ऐंटी हुई आड़ी कड़ी के साथ फर्श को अलग किया जा सके जिस से कि माल किश्तियों और डूंगों का आवरण कठोर रखा जा सके और जिससे हाऊस बोट में कमरों के बीच जाने का रास्ता बन सके। फिर भी हाऊस बोट का अधिकतर भाग पारंपरिक कश्मीरी ढंग और निर्माण तरीकों के अनुसार है। जमीन पर बने घरों की अपेक्षा हाऊस बोट का एक स्पष्ट लाभ इस दृष्टि से है कि इस में धूल और गन्दगी से बचाव रहता है, चूहे और अन्य जन्तुओं के आक्रमण कम कष्टदायी होते हैं और उन्हें आसानी से दूर किया जा सकता है। सभी हाऊस बोट (बोर्ड पर व्यक्ति विशेष के सभी समान सहित) अब भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर तीव्र गति से आ जा सकते हैं। फिर भी हाऊस बोट बांधने की व्यवस्था में विशेष सावधानी बरतना आवश्यक है क्योंकि यदि हाऊस बोट से बंधे न होंगे तो जल की सतह में चढ़ाव आने पर बजरी नाव के किसी पेड़ से टकरा कर उलटने या डूबने की आशंका हो सकती है। परन्तु कश्मीर के नाविक अपनी अन्य छोटी बड़ी किश्तियों के संचालन मामलों की तरह हाऊस बोट का नियंत्रण करने में भी गजब के प्रवीण होते हैं।

आजकल के हाऊस बोट वाले उन साधारण नाविकों की पीढ़ी से संबंध रखते हैं जो कभी अपनी आजीविका, मछली मार कर, वसन्त या हंस का शिकार करके या कभी कभी लोगों, सब्जियों या अन्य हलके माल को अपने डूंगों और शिकारों पर ढो कर कमाते थे। नाविकों की जाति भारी माल ढोने वाली किश्तियों को मेहनती नाविकों से भिन्न है। ये सतर्क लोग इतने तर्क संगत और सही होते थे कि उन यात्रियों की बढ़ती हुई उस संख्या को तत्काल समायोजित कर लेते थे जो अपने साथ अपना सामान ही नहीं बल्कि रसोइया और नौकर भी लाते थे। अधिक समय नहीं हुआ फिर भी समय के साथ-साथ नाविकों ने, शिकार और लम्बी सैर में यात्रियों का पथ प्रदर्शन करने से पूर्ण उनके साथ आए नौकरों और खानसामों के कार्यों को अधिक आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया। जबकि योरुप वालों को यह महसूस हुआ कि इस अजनबी स्थान पर नौकरों को अपने साथ लाना वास्तव में बहुत ही महंगा पड़ता है।

इन डूंगा नाविकों के लिए उनका यह नया कार्य समृद्धि लाया जो यह सोच कर उत्साहित हो रहे थे कि उनका व्यवसाय कितना लाभदायक हो सकता है। यदि वे स्वयं नये ढंग से विकसित और विशाल हाऊस-बोटों की खरीद में पूंजी लगाएं।

नाविक अपने उपार्जित और उधार लिए धन से हाऊस बोट खरीदता और फिर उसे योरपीयन अतिथियों के सुझावों के अनुसार पाश्चात्य ढंग से सजाता। जैसे-जैसे समय बीतता गया, हाऊस बोट बड़े आकार के बनने लगे। मध्य शताब्दी तक इनकी लम्बाई 107 फुट और चौड़ाई 14 फुट तक हो गई। इस में बैठने का एक बड़ा कमरा, एक अलग भोजन कक्ष और अलग अलग स्नान घरों सहित दो या तीन शयन कक्ष होते थे। सभी पेचीदे 'खातमबंध' के काम से सुसज्जित सभी छतें, सरकवां दरवाजे, शीशे की खिड़कियों और जालीदार पर्दे धूप से बचने के लिए छतरी वाले डेक, रसोई भण्डार, सुन्दर अलमारियां, बिजली की फिटिंग्स पूर्ण बिस्तर क्षौम और 'चीना' सहित योरपीयन ढंग के विलासी साज-सामान मौजूद था और अन्दर तथा बाहर की सभी दीवारें आकर्षक रंग से रंगी देवदार लकड़ी से बनी होती थी। हाऊस बोट नाविक अब मूल्यवान संपत्ति स्वामी ही नहीं था बल्कि अब वह पानी भरने वालों, भंगी और लम्बा कूदने वालों को (अगर हाऊस बोट को चलाना हो तो) काम देने वाला भी था क्योंकि उसके अपने परिवार के सदस्य भी अब अत्यन्त विशिष्ट व्यवसाय की सभी बहुशासित आवश्यकताओं को पूरा करने में आत्म निर्भर नहीं थे।

हाऊस बोट वाला और उसका डूंगा

हाऊस बोट वाला अपने परिवार सहित एक डूंगे में रहता है जो हाऊस बोट (जब बंधी हो तब) के पीछे एक तख्तों के समूह से बंधा होता है। डूंगे का पहला कमरा हाऊस बोट के किराएदारों के लिए खाना बनाने के रसोईघर का काम देता है जबकि आखिरी कमरा नाविक परिवार के रसोईघर का काम देता है। दोनों रसोई घरों की ढलवां छतें समंजनीय होती हैं और धुएं तथा खाना बनाने से उत्पन्न गंध से बचने के लिए उन्हें ऊपर उठा कर खोला जा सकता है। दोनों रसोईघरों में लकड़ी जलाने के लिए बहुत ही पुराने ढंग के मिट्टी के चूल्हे होते हैं। अनेक हाऊस बोट मालिक अपने किराएदारों का रसोइया भी स्वयं ही होते हैं। पुराने हाऊस बोट नाविकों में से कुछ नाविक जिन्होंने परिश्रमी किरायेदार मेम साहिब लोगों से पाक कला सीख ली है और इन्हें मिट्टी के बने चूल्हों पर बनाए गए भोजन और उसे मेज पर सुरुचिपूर्ण ढंग से परोसने की क्रिया में, अच्छे से अच्छे खान पान प्रबन्धकों की बराबरी कर सकते हैं। तख्ते से बनी हाऊस बोट की बाहरी दीवारें जो नाव की पूर्ण लम्बाई को विस्तृत करती हैं, अपने किरायेदार के आराम के लिए प्रत्येक संभव काम करने की, नाविक की इच्छा की प्रतीक प्रतीत होती हैं। तख्ते की दीवार वह माध्यम है जिस पर होकर नौकर "कुक बोट" (हाऊस बोट के डूंगे को इसी नाम से पुकारा जाने लगा है) से खाना लेकर हाऊस बोट में दाखिल हुए बिना भोजन कक्ष तक जाया जा सकता है।

लाभदायक व्यवसाय

यह बात उल्लेखीय है कि हाऊस बोट व्यवसाय के पूर्णतः लाभदायक प्रमाणित हो जाने पर अनेक व्यापारियों और थलवासियों ने भी, हाऊस बोट मालिकों की प्रतियोगिता में पर्यटकों की खान-पान व्यवस्था के लिए हाऊस बोट खरीदने प्रारम्भ कर दिए। द्वितीय महायुद्ध के दौरान जब समस्त दक्षिण पूर्व एशिया से आकर हजारों सैनिक कर्मचारियों ने अपनी छुट्टियां श्रीनगर में बिताई तो हाऊस बोट व्यवसाय की समृद्धि चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। तदुपरांत 1947 में, श्री नगर की समस्त अर्थ व्यवस्था को गहरी चोट लगी। कोई भी यात्री श्रीनगर में न आया और न किसी

compiled and created by Bhartesh Mishra

ने हाऊस बोट किराये पर लिया। हाऊस बोट का कार्य हमेशा मौसमी होता है। गर्मियों में कमाई न होने के कारण सर्दी के महीनों में गुजारे के लिए नाविकों को न केवल अपना जमा किया हुआ धन व्यय करना पड़ा बल्कि अपने हाऊस बोट से साज सामान यहां तक की खुलने वाले फर्श बोर्डों (अर्थात् सब कुछ सिवाय उसके जो कीलों से जड़ा था) तक को बेचने के लिए विवश होना पड़ा। उन्होंने किश्तियां भी बेच दी होतीं, परन्तु इनका कोई खरीददार नहीं था। अगस्त 1949 में लगभग एक सौ हाऊस बोट किराए पर उठाए गए। मुख्यतः किरायेदार भारत और पाकिस्तान के लिए स्थापित संयुक्त राष्ट्र आयोग के सदस्य एवं कर्मचारी तथा संयुक्त राष्ट्र सैनिक पर्यवेक्षक थे। 400 से भी अधिक हाऊस बोट श्री नगर में खाली खड़े थे।

बहुत से हाऊस बोट नाविकों को, अपने पूर्वजों के अनेक परम्परागत आजीविका साधन अपनाने पड़े और उन्होंने अपनाए भी। कुछ हाऊस बोट में स्त्रियों ने अपने छोटे-छोटे "धन्धे" शुरू कर लिए (उनमें से कुछ धन्धे उन की दादियां इससे पूर्व आवश्यकतानुसार कर चुकी थीं), जैसे सिवाड़ा बीनने, भूनने और बेचने का काम। कुछ स्त्रियों ने घर पर ही रेशम के कीड़ों को उबाल कर, उनसे निकले रेशम के धागों को लपेटने का काम किया। कुछ हाऊस बोट नाविकों ने तो अपने बेटों में से एक या अधिक को विभिन्न प्रकार की दस्तकारी सीखने के लिए भेजा जैसे दर्जी का काम या बढ़ई गीरी। यह काम नाविकों ने इससे पूर्व कभी नहीं किया था। यह सब इस सिद्धान्त के अनुसार किया गया कि एक हाऊस बोट के लिए सभी बेटों की आवश्यकता नहीं है, जब कभी और यदि किसी का हाऊस बोट किराए पर न होता तो आमदनी के लिए पूर्णतः भिन्न प्रकार का मार्ग वांछनीय हो जाता। तब छठे दशक में यात्री पुनः कश्मीर में आए। इस बार भारतीयों की संख्या पहले से कहीं अधिक थी जिन में से कुछ केवल हाऊस बोट तथा उसमें लगे साज सामान को ही किराये पर लेना बेहतर समझते हैं। प्रारम्भिक अवस्था की तरह ही जब गैर कश्मीरी लोगों ने शुरू शुरू में किश्तियों में रहना प्रारम्भ किया था, ये भी खाना बनाने के लिए अपना बावर्ची साथ लाते हैं।

आधुनिक ढंग

धीरे-धीरे अधिक से अधिक हाऊस बोट नाविकों ने अपनी नावों को झोपड़ीनुमा रूप देने के लिए उनके बाह्य भाग पर रोगन करना शुरू किया जो कि प्रत्येक वर्ष पुनः रोगन न किए जाने पर बिगड़ जाता है और भद्दा लगने लगता है। उनका कहना है कि रोगन से लकड़ी सुरक्षित रहती है। बहुत से हाऊस बोटों की परम्परागत अनन्यता तथा आकर्षक रंगों का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो चुका है, जो शताब्दियों से लाभकारी प्रमाणित हो चुका है।

छठे दशक के दौरान अधिक से अधिक हाऊस बोट किश्तियों में अतिरिक्त टेंक लगा दिए गए ताकि स्नान घरों की चिलमचियों, स्नान टबों, फव्वारों तथा नए फ्लश शौचालयों में पानी अधिक मात्रा में पहुँच सके। पहले के बने हाऊस बोट की अपेक्षा नव निर्मित विशिष्ट हाऊस बोट कुछ फुट अधिक चौड़े थे। नाव के छोटे से भले ही क्षेत्र में बाड़ लगा कर उसे बरामदे में परिवर्तित कर लेना एक फैशन बन गया। छत के डेक पर लगे विस्तृत और पर्याप्त शामियाने के अतिरिक्त रंगबिरंगी छतरियां लगाना लगभग प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाने लगा था। सातवें दशक के शुरू में आते आते जो अनेक हाऊस बोटों की बैठकों में रेडियो लग चुके थे। भोजन कक्ष में रेफ्रिजरेटर लगाना तो अद्यतन अभिनव परिवर्तन है। और आज तो कुछ हाऊस बोट नाविकों के पास अपने स्थायी टेलीफोन भी हैं।

नाविक समुदाय

कई दशक पूर्व नाविकों की हाऊस बोट विशेषतया ने एक पूर्णतः नये प्रकार के नाविक समुदाय को जन्म दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हाऊस बोट नाविक परिवारों का जीवन श्री नगर, अन्य नाविक परिवारों के जीवन की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील था, इस दृष्टि से कि उन्होंने स्वच्छ, कम भीड़ के इलाकों डूंगों में रहना, पाश्चात्य ढंग की जैकेट और पतलून पहनना, साईकिल खरीदना या किराए पर लेना, अपने बेटों को सरकारी स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजना, अपने सभी बच्चों को चेचक का टीका लगवाना, बीमारी में थर्मामीटर का प्रयोग करना, पीने के पानी को कम से कम महामारी के समय उबालना, बैंकों में खाता खोलना, डूंगों में छत की रोशनी के लिए बिजली का प्रयोग करना अन्य नाविकों से पहले आरम्भ किया। परन्तु अधिकांश हाऊस बोट नाविक स्वास्थ्य संबंधी सावधानी बरतने की निरन्तर आदत डालने और सफाई के कारणों को समझने से अभी बहुत दूर हैं। उनके नैमिक कार्य, प्रतिष्ठा और उनकी स्त्रियों की वेशभूषा का तरीका नहीं बदला है (यद्यपि वे मिल में बने हुए रंगीन कपड़े पहनने लगी हैं)। इसी प्रकार हाऊस बोट नाविकों ने अपने घरों में ट्रांजिस्टर को छोड़ कर अन्य नई सजावट या नये बर्तनों का प्रयोग नहीं किया है (ट्रांजिस्टरों-रेडियो से निस्सन्देह उनके परिवर्तन की गति अपने आप तीव्र होगी)। इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि अनेक परिस्थितियां असामान्य रूप से एक जगह पाई जाती हैं जैसे :—

(1) हाऊस बोट नाविक एक लम्बे समय से (रणबीर सिंह 1857–55) के राज्य से आरम्भ होकर आधुनिक तरीकों और पाश्चात्य रहन सहन से प्रभावित होते रहे हैं (2) यह प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता रहा है और सितम्बर 1947 के बाद कुछ वर्षों को छोड़ कर लगातार बढ़ता रहा है और यह प्रभाव एकाएक नहीं पड़ा है। (3) हाऊस बोट नाविक के पास अपने अधिकार में आरामदायक पश्चिमी ढंग का मकान मौजूद है। (4) फिर भी इस प्रकार की वस्तुएं अथवा इसी प्रकार की दूसरी वस्तुएं हाऊस बोट नाविक के बरेलू डूंगे में उन की खुशहाली के समय मौजूद नहीं रही हैं।

हाऊस बोट नाविकों को इस बात का श्रेय है कि उनका मेरुदण्ड दिखाई देता रहता है और अपनी विदग्धता के साथ साथ उनके रहन-सहन के ढंग पर उन्हें गर्व है। आशा है निकट भविष्य में इस नौका वहन व्यवस्था में कुछ ऐसे सुधार हो सकेंगे जो विदेशी और भारतीय दोनों प्रकार के पर्यटकों में भारी वृद्धि के लिए आवश्यक हैं। इस वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए पर्यटन मंत्रालय प्रयत्नशील है। तथापि इस क्रिया में यह सावधानी अवश्य बरती जाए कि शीतगर की हाऊस बोटों में जो अद्वितीय है वह नष्ट न होने पाये।

रूपांतर : कमला कुमारी

compiled and created by Bhartesh Mishra

कल्हण और उसकी राजतरंगिणी

साधवी यासीन

राजाओं की नदी

भारतीय स्थापत्य कला, मूर्तिकला, गुफा-मन्दिर तथा चित्र, अधिकतर, अनेक प्रवर्त्तकों के नाम प्रकट नहीं करते। आत्म-त्याग का अनूठा चरित्र प्राचीन भारत का विशिष्ट गुण है। कुछ एक साहित्यिक तथा ऐतिहासिक कृत्यों के सम्बन्ध में भी ऐसा देखा गया है। राजतरंगिनी के, "राजाओं की नदी" के विषय में, हम कम से कम लेखक का नाम तो जानते हैं, परन्तु, यहां पुनः लेखक की समस्त वंश-परम्परा तथा जीवनी विस्मृति में निहित है। कल्हण उन प्रख्यात भारतीय ग्रन्थकारों में सम्मिलित हो गया है। जिनकी स्मृति केवल उनकी रचनाओं में ही विद्यमान रहती है। राजतरंगिनी की प्रत्येक पुस्तक के अन्त में संलग्न प्रस्तावनात्मक टिप्पणी, ग्रन्थकार का नाम कल्हण बताती है, जोकि प्रसिद्ध काश्मीरी मंत्री, "यशस्वी अधिपति कंपक" का पुत्र था। ऐतिहासिक तथ्यों से प्रकट होता है कि वह ब्राह्मण था। राजतरंगिनी की संस्कृत शैली ब्राह्मण-वंश-परम्परा के पण्डितों की अपनाई हुई शैली के समान है। उसके प्रत्येक ग्रन्थ के वृत्तलेख की प्रस्तावना भगवान और पार्वती के मिलन का प्रतिनिधित्व करते हुए अर्द्धनारीश्वर का रूप धारण किये हुए शिव की स्तुतियों से आरम्भ होती है। इसके अतिरिक्त, राजतरंगिनी के निर्वाहक लेखक, जोनराज ने, कल्हण के लिये द्विज के विशेषण का उल्लेख किया है। उसका कालानुक्रम से घटनाओं का वर्णन उसके बौद्ध धर्म के प्रति सद्भावपूर्ण व्यवहार को प्रकट करता है। उसकी निष्ठा को एक शब्द में संक्षिप्त रूप से "निर्वाचनवाद" कहा जा सकता है।

कल्हण नाम संस्कृत के शब्द कल्याण अर्थात् "भाग्यवान्", से प्राकृत के कल्हण में लिया गया था।

परिपक्वावस्था की कृति

कल्हण ने अपनी रचना 1148–1149 के वर्षों में लिखी। रचना की शैली और भावना से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार ने अवश्य परिपक्वावस्था प्राप्त कर ली होगी। सुस्सल के शासन (स० ई० 1112–20) की अस्थिर परिस्थितियों के विस्तृत वर्णन से यह

compiled and created by Bhartesh Mishra

स्पष्ट हो गया है कि वह उस समय इस अवस्था को अवश्य प्राप्त कर चुका होगा। अतः उसकी सम्भाव्य जन्मतिथि बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में मानी जा सकती है।

कश्मीर के इतिहास में, कल्हण की जन्म शताब्दी, राजवंशीय विलव द्वारा राजनैतिक परिवर्तनों के लिये जानी जाती थी। राजा हर्ष (स० ई० 1089–1101) ने सबसे पहले कश्मीर को अच्छे शासन का समय प्रदान किया परन्तु वह अपने ऐश्वर्य तथा अधिक खर्चीलेपन के स्वभाव को भेंट हो गया। उसकी हत्या के पश्चात्, कश्मीर ने सात वर्ष और, अन्तर्युद्धों को देखा जिनके कारण उसका साम्राज्य मृत्यु और विनाश को प्राप्त हुआ।

कल्हण वैज्ञानिक प्रतिभावान होने के साथ-साथ आलोचनात्मक प्रकृति का भी था। उसका कश्मीरी लोगों के विभिन्न वर्गों का चित्रण बहुत सुवर्णित तथा जीवन की सत्यता के अनुरूप है। उस समय की अशांत राजनैतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में सामान्य जनता की प्रतिक्रिया वास्तव में हृदयद्रावक भावनाओं से परिपूर्ण है। उसका कहना है कि लोग "किसी भी परिवर्तन का स्वागत करने के लिए संकल्प थे।" उसके द्वारा किये हुए निष्क्रिय तथा उदासीन नगर जनसमूह व उसकी भावनाओं के वर्णन से विदित होता है कि वह अपने जनसमूह देशवासियों की प्रकृति को बहुत अच्छी तरह समझता था।

समय की अस्थिर राजनैतिक परिस्थितियों ने कला के सृजनात्मक कार्यों के सम्वर्धन के सभी अवसरों को निकाल दिया; इसलिये राजतरंगिनी की रचना किसी राजा के संरक्षण के अधीन नहीं की गई। कल्हण अपने उत्तरदायित्वों के प्रति बहुत विवेकशील था। वह केवल उन ऐतिहासिकों को, "प्रशंसनीय समझता है, जिन का शब्द, अतीत के तथ्यों का वर्णन करने में, न्यायधीश के शब्द के समान, प्रेम अथवा घृणा से स्वयं को मुक्त रखता है और यहां तक कि वह अमृत की नदी से भी श्रेष्ठ होता है तथा बीते हुए युगों के लोगों के समक्ष रख सकता है।"

साहित्यिक प्रशिक्षण

यह जानना रुचिकर होगा कि कल्हण ने स्वयं को एक कवि का रूप देने की व्यवस्था की थी कल्हण द्वारा समुन्नत किये गए संस्कृत के पाण्डित्यपूर्ण काव्य से व्यक्त होता है कि उसे भारतीय साहित्य-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र में गहन प्रशिक्षण प्राप्त था, तथा संस्कृत व्याकरण के सिद्धांतों पर भी उसका समान अधिकार था। उसके साहित्यिक अनुशीलन गहन तथा सर्वोन्मुखी थे। अपने समय के विदित सम्पूर्ण साहित्य, महाकाव्यों से प्रारम्भ होकर कालिदास रचित रघुवंश और मेघदूत तथा बिल्हण के विक्रमादेवचरित और हर्षचरित तक का उसने अध्ययन किया था। स्टीन कहता है : "उसके साहित्यिक प्रशिक्षण का प्रतिरूप, निस्सन्देह, पारम्परिक था और जिस प्रकार से उस ने इसका प्रयोग किया उस से उसके परम्परागत आदर्शों से जान बूझ कर न हटने का पता चलता है। फिर भी यह स्पष्ट है कि कल्हण अपने शास्त्रों में लीन, किसी परम्परावादी समुदाय से सम्बन्धित नहीं था।" राजतरंगिनी का लेखन आरम्भ करने से कल्हण ने विभिन्न प्रकार के शिलालेखों सहित आदि ग्रन्थों का अतिसूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया था। उसने मुद्राओं का भी अध्ययन किया और भवनों का निरीक्षण किया।

देश की अव्यवस्थित राजनैतिक परिस्थितियों के कारण कल्हण ने अपनी पैतृक जीवन-यापन प्रणाली के सभी सम्भव मार्गों का अन्त होता पाया। इसलिये, उसने सोचा कि अपनी प्रतिभा को सर्वोत्तम प्रकार से उपयोग करने के लिये, प्राचीन काल से ले कर अपने समय तक के अपने देश के इतिहास को लिखा जाये। उसे क्षेत्रीय देशभक्ति से भी प्रेरणा प्राप्त हुई थी। अतीत का श्रेष्ठ चित्रण कर के वह चाहता था कि उसके देश के लोग हीन भावना का त्याग कर दें, गर्व का अनुभव करें तथा अपनी भूतकालिक परम्पराओं का अनुकरण करें। इसलिये वह बताता है कि अशोक महान् एक ऐसा राजा था, जिसके उदाहरण अनुकरणीय थे। यह कल्हण की केवल देशभक्ति ही है जब वह कहता है : "कश्मीर आध्यात्मिक गुणों की शक्ति द्वारा तो पराजित किया जा सकता है, परन्तु सैनिकों की शक्ति द्वारा नहीं।"

कल्हण ने बिना पक्षपात किये तथा सत्यनिष्ठा से घटनाओं का वर्णन किया है। समकालीन घटनाओं को लेख बद्ध करते समय कल्हण ने प्रमुख व्यक्तियों को उनके व्यक्तिगत चरित्र में प्रस्तुत किया है, आदर्श रूप में नहीं। यहां वह ऐतिहासिक विशिष्ट पुरुषों के साथ आचरण करने में याग तथा बिल्हण से भिन्नता प्रस्तुत करता है, जिन्होंने अपने वीरों को पूर्ण श्वेत तथा शत्रुओं को पूर्ण श्याम रंग में रंगा है।

स्वयं में एक वर्ग

राजतरंगिनी भारतीय साहित्य में स्वयं में एक वर्ग है। यह चरितों से बहुत भिन्न है, जोकि राजकीय संरक्षण के अधीन रचे गये थे। चरितों के विद्वान कवि काल्पनिक तथा पौराणिक कथाओं का आविष्कार करने तथा अपने आश्रयदाताओं की उपलब्धियों को गौरवान्वित करने के लिये असाधारण प्रतिभाशाली थे। उनकी कृतियां साहित्य की ऐसी अत्युत्कृष्ट रचनाएं हैं जो काव्यमय कला से, अत्युक्तिपूर्ण अलंकरण से तथा अलंकार शास्त्र से सिक्त हैं। राजतरंगिनी, दूसरी ओर, एक ऐसी विशिष्ट तथा निष्पक्ष बुद्धि की कृति है, जो भूत और वर्तमान को ऐतिहासिक कुशाग्रता द्वारा देखती है, किसी नायक की आराधना अथवा आश्रयदाता को प्रसन्न करने की इच्छा से नहीं देखती। राजतरंगिनी केवल संस्कृत की रचनाओं में ही स्वयं में एक वर्ग निर्माण नहीं करती है, अपितु पूर्वी इस्लाम तथा मध्यकालीन यूरोप के ऐतिहासिक विवरणों में भी आश्चर्यजनक सादृश्य रखती है।

राजतरंगिनी की पहली तीन पुस्तकों (अध्यायों) की रचना करते समय, कल्हण ने उन परम्पराओं का लिखित अथवा मौखिक प्रयोग किया है, तथा कालानुक्रम से उन घटनाओं का वर्णन किया जो कि प्रत्यक्ष रूप से उन परम्पराओं पर आधारित थीं। उन परम्पराओं को लिखने में, समय समय पर, कल्हण में स्थित समालोचक प्रकट हुआ है। उदाहरणतः, राजा ललितादित्य की मृत्यु के लिये, बिना कुछ कहे कि क्या सच है, तीन परम्पराओं का उल्लेख करता है, तथा इस प्रकार व्याख्या करता है : "जब महापुरुषों का अन्त हो जाता है तो उनकी ..... असामान्य महानताओं की परिचायक कथायें आविर्भूत होती हैं।" राजा मेघावन के पराक्रमों का ऐसी शिथिलता से वर्णन किया गया है कि कल्हण स्वयं शायद उनकी सत्यता पर संशंकित है, परन्तु वह हर्ष की नृशंसताओं के साथ उनकी तुलना करते हुये उनका औचित्य बनाने का प्रयत्न करता है, जो कि, अपने स्थान पर, सम्भवतः विश्वसनीय न मानी जायें, परन्तु उनके लिए वहां प्रत्यक्ष दर्शी थे।

compiled and created by Bhartesh Mishra

अपने ग्रन्थ के अन्तिम दो अध्यायों के लिए कल्हण के मुख्य सूत्र थे उसके समकालीन व्यक्ति, उसके पिता, साथी देशवासी तथा उसकी अपनी स्मरणशक्ति । इसी लिये भिक्षाकर की सेनाओं के विद्रोह की बहुत सी घटनाओं के सम्बन्ध में, वह स्पष्ट रूप से लिखता है, कि वह स्वयं प्रत्यक्ष दर्शी था । इसमें आश्चर्य नहीं कि पूर्ववर्ती दो पीढ़ियों का अधिकतर इतिहास उसने अपने पिता तथा पिता के मित्रों से प्राप्त किया था, जोकि अपने समय की राजनीति में प्रमुख स्थानों पर पदारूढ़ थे ।

पाठ्य ग्रन्थ

विस्तारांकन करते हुए, राजतरंगिनी असमान आकार की आठ पुस्तकों (अध्यायों) से युक्त, असाधारण साहित्यिक गुणों से ओत-प्रोत संस्कृत में लगभग 8,000 श्लोकों में लिखी गई है पाठ्य ग्रन्थ को मोटे तौर पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

1. पुस्तकें I–III परम्पराओं पर आधारित हैं ।
2. पुस्तकों IV-VI में, जोकि कराकोटा तथा उत्पल राजवंशों से सम्बन्धित हैं, उसने पूर्ववर्ती ऐतिहासिकों की कृत्तियों का प्रयोग किया है जोकि उनके द्वारा वर्णित घटनाओं के समकालीन अथवा निकट–समकालीन थे ।
3. पुस्तकों VII और VIII के लिये जो दो लोहार राजवंशों के विषय में है, उसने व्यक्तिगत ज्ञान तथा प्रत्यक्ष दर्शी घटनाओं का, जो कि शायद दूसरे अथवा तीसरे हाथों से प्राप्त हुई थी, प्रयोग किया है ।

राजतरंगिनी की शैली अपरिष्कृत अथवा कठिन नहीं है । यह विकीर्ण श्लोक आलंकारिक भाषा से अलंकृत अथवा काल्पनिक चित्रण से सुसज्जित, देशी संस्कृत में है । कल्हण का विचार था कि एक ऐतिहासिक पाठ्यग्रन्थ भी एक कलाकृति होनी चाहिये और उसने अपनी कृति को पाठकों के लिए आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया । अन्तिम दो अध्यायों को छोड़ कर, जहां कि उचित परिचय दिये बिना ही अनेक पात्र प्रस्तुत किये गये हैं, उसके सभी वृत्तांत स्पष्ट और प्रभावपूर्ण हैं । कल्हण ने ग्रन्थ के आरम्भ से ही अत्यधिक धर्मनिष्ठा से, घटना क्रम का नियमित रूप से पालन किया है, परन्तु दूसरे तथा तीसरे भागों में अक्षरशः ऐसा नहीं किया । इससे ज्ञात होता है कि वह अपना ग्रन्थ उन लोगों के लिए लिखता था, जोकि उस समय की घटनाओं से परिचित थे ।

इतिहास लेखन के लिये परम्परा

राजतरंगिनी लिख कर कल्हण ने इतिहास लेखन में एक परम्परा स्थापित की है । उसके पश्चात्, मुगल सम्राट अकबर द्वारा कश्मीर हथिया लेने के अन्तर, कुछ समय तक, उसके ग्रन्थ का, जहां से उसने छोड़ा था, क्रम से चार ऐतिहासिकों द्वारा लेखन होता रहा ।

कल्हण के अनुसार, ऐतिहासिक का उद्देश्य किसी की आंखों के समक्ष बीते हुये युग के सजीव चित्र प्रस्तुत करना है । इतिहास के पास विशिष्ट व्यक्तियों तथा घटनाओं को अमरत्व प्रदान करने वाली एक अनुपम प्रतिभा है, और इसमें यह पौराणिक देवाहार का भी अतिक्रमण कर जाता है, जबकि दूसरी वस्तु उसका पान करने वाले को ही अमरत्व प्रदान करती है, पहली उन सब को जिन का यह स्पर्श करती है । कल्हण जानता था कि उसकी कृति न केवल स्थायित्व प्राप्त करेगी, अपितु समस्त पात्रों तथा स्वयं उसको सजीवता प्रदान करेगी । उसकी दृष्टि में एक और उद्देश्य था । वह कहता है "यह वीरतापूर्ण ग्रन्थ, जोकि उचित प्रकार से रचित है, एक उत्तेजक अथवा एक शान्तिकर औषध की भान्ति, समय और स्थान के अनुसार राजाओं के लिए भी लाभदायक होना चाहिये ।" कल्हण आशा करता था कि योग्य अथवा अयोग्य दोनों प्रकार के राजा उसकी कृति से लाभान्वित होंगे । वह ऐतिहासिक निष्पक्षता का कट्टर समर्थक है ।

कल्हण का आधुनिकतम घटनाओं का मूल्यांकन यथायोग्य है । वह किसी भी पात्र को पूर्णरूपेण कृष्ण अथवा धवल चित्रित नहीं करता । वह मानव की प्रकृति तथा उसकी मनोवृत्ति में गहन अन्त दृष्टि रखता था । वह कहता है : "जिस प्रकार आकाश में छोटे बादल आकार परिवर्तन करते हैं, और हाथियों, चीतों, दानवों, सर्पों, अश्वों व अन्य पशुओं का रूप ग्रहण करते हैं—उसी प्रकार भावनाओं की लहरें मानवीय हृदयों को, समय परिवर्तन के साथ, दयालुता से कठोरता में बदलती रहती हैं ।"

राजतरंगिनी के शिक्षात्मक स्वरूप का शान्त रस अर्थात् वैराग्य की भावना के चयन से पता लगता है । यहां कल्हण का मुख्य प्रयोजन यह प्रदर्शित करना है कि सांसारिक ऐश्वर्य तथा राजकीय सम्पन्नता अल्पकालिक गौरव की वस्तुएं हैं । मानव के कुकृत्य भाग्य के विलक्षण हाथों की सहायता से उसे पीछे ले जाते हैं । उसी प्रकार, नीति के कार्य, राजनीति तथा व्यक्तिगत आचरण धर्म अथवा नीतिशास्त्र के अनुसार बार-बार प्रशासित और विश्लेषित किये जाते हैं ।

उदार स्वतन्त्रशासन का पक्ष समर्थन

राजतरंगिनी उदार स्वतन्त्र शासन के पक्ष में तथा सामन्तवाद के विरोध में युद्धारम्भ करती प्रतीत होती है । धर्मनिष्ठ राजनीति (राजनीतिज्ञता) में विश्वास करते हुए, योग्य शासन के विषय में उसकी अपनी ही धारणाएं थीं । व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से राजतरंगिनी का कहना है कि एक शक्तिशाली राजा ही आदर्श राजा है, जोकि विद्रोही तत्वों पर कठोर नियन्त्रण रखता है, परन्तु अपनी प्रजा का हितैषी तथा उसकी आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूतिशील है । वह स्वेच्छानुसार अपने मंत्रियों का चुनाव करता है, तथा उनके परामर्शों को ध्यान से सुनता है । कल्हण ने डामरों, छोटे-छोटे जागीरी मुखियाओं, जोकि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् से कश्मीर में अराजकता तथा विप्लव का कारण बने हुए थे, के प्रति बिना किसी झिझक के अपनी अस्वीकृति प्रदर्शित की है । राजतरंगिनी लिखने का, दूसरा प्रायोजन सम्भवतः कश्मीर के नरपतियों को उनके प्राचीन गौरव तथा पराक्रम से प्रोत्साहित करना, तथा ऐसे विद्रोही तत्वों का निग्रह करना था, जोकि राजा को अशक्त बनाने के लिए कृतसंकल्प थे । वह कहता है : "कोकड़ा अपने पिता की हत्या करता है और श्वेत दीमक अपनी माता का नाश करती है, परन्तु कृतघ्न कायस्थ, शक्तिशाली हो जाने पर, सर्वस्व नष्ट कर देते हैं," समय समय पर कल्हण निराशावादी बन जाता है । हर्ष द्वारा कहलाये गये शब्द इसका प्रतीक हैं : "यह भूमि एक पतिव्रता स्त्री बन जाने के अनन्तर, दिवालिये की बाहों में एक वेश्या के समान गिर पड़ी है । अब के पश्चात्, जो भी यह जानता है कि केवल षड्यन्त्र द्वारा किस प्रकार सफलता प्राप्त की जा सकती है, उस राज्य की आकांक्षा करेगा । जिस की शक्ति नष्ट हो चुकी है ।" यहां इतिहासकर अपनी दिव्य दृष्टि का प्रदर्शन करता है । वह एक साधारण कवि अथवा एक विद्वान ही नहीं है ।

राजतरंगिनी कर्म शक्ति का प्रतिपादन करती हुई एक वीर गाथा है । इस जीवन में मनुष्य जो भी अच्छे अथवा बुरे कर्म करता है,

compiled and created by Bhartesh Mishra

कल्हण विश्वास करता है, आने वाले जीवन में वह उसका फल प्राप्त करता है। प्रायः कर्मों की शक्ति घटनाओं को आकार और मौलिक नैतिकता को स्वीकृत प्रदान करती है।

कल्हण के अनुसार, भाग्य, मानव के भविष्य को प्रभावित करने वाली दूसरी शक्ति है। भाग्य को कभी-कभी भगवान के समानार्थक शब्द के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। देवता अथवा देवतागण प्रायः मानविक कार्यकलापों पर प्रभाव डालते हैं। कभी कभी प्रतिकूल भाग्य उन से पराजित हो जाता है जो अपनी भुजाओं पर विश्वास रखते हैं। यहां भी राजतरंगिनी अपने देशवासियों को एक और आशापूर्ण संदेश प्रदान करती है कि स्रष्टा चाहे जो कुछ भी उनके लिये अपने भण्डार में रखता हो, अपनी शक्तियों पर विश्वास रखने वाला केवल शक्तिशाली राजा ही कश्मीर की रक्षा कर सकता है।

राजतरंगिनी राजाओं तथा उन की प्रजा के कर्मों में एकसूत्रता जोड़ती है। अपनी प्रजा की योग्यताओं द्वारा ही योग्य राजाओं का जन्म होता है। राजा और उसकी प्रजा प्रकृति के आदेशों को मूर्त रूप प्रदान कर सकते हैं।

त्रुटियां

इस महान् कृति में भी कुछ त्रुटियां हैं। प्रयोग किए गए मूल-ग्रन्थों का समालोचनात्मक ढंग से विश्लेषण व विवेचन नहीं किया गया। जब किसी की तात्कालिक लेखों तक दृष्टि जाती है तो नवीं शताब्दी के मध्य का आख्यान अधिक काल्पनिक तथा असंगत लगता है। लेखों की त्रुटियों तथा परस्पर विरोधी सम्मितियों के, जिन्होंने कल्हण की प्रस्तावना के अनुसार, उस का कार्य कठिन बना दिया था, हमें कहीं भी स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। अविश्वसनीय काल्पनिक कथाएं, प्रत्यक्ष सम्भावनाएं, अतिशयोक्तियां तथा अन्धविश्वासपूर्ण मान्यताएं, ऐतिहासिक सत्यों के रूप में वर्णित की हैं, जोकि उसकी विश्वासशीलता को धोखा देती हैं। उसने पौराणिक कथा-साहित्य को इतिहास से पृथक् नहीं किया है। उसी प्रकार, कल्हण का घटना-क्रम भी वैज्ञानिक आधार सामग्री पर आधारित नहीं है। निश्चित रूप से, कोई भी घटना क्रम के विषय में एक ऐसे लेखक से आलोचनात्मक निर्णय की आशा नहीं कर सकता जिस ने युधिष्ठिर के राज्यभिषेक की पुराणोक्त तिथि महाकाव्यों से लेकर इतिहास लिखना प्रारम्भ किया हो, तथा एक मात्र शासक राणादित्य के, 300 वर्ष के समय का गुणगान किया है। इसके लिए कल्हण को दोषी नहीं ठहराया जा सकता और न ही ठहराया जाना चाहिये, क्योंकि भारतीयों में यह सामान्य प्रवृत्ति थी, जिसको अलबरूणी ने संक्षेप से इस प्रकार बताया है : "दुर्भाग्यवश, हिन्दू तथ्यों के ऐतिहासिक अनुक्रम के प्रति अधिक सावधान नहीं हैं, वे अपने राजाओं की कालक्रमानुसार उत्तराधिकारिता वर्णन करने के लिए बहुत असावधान होते हैं, तथा जब उन से जानकारी देने के लिये आग्रह किया जाता है, और वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, नहीं जानते कि क्या कहें, तो वे दृढ़ता से कहानियां गढ़ने पर उतर आते हैं।"

राजतरंगिनी भी स्वयं में एक वैषम्य उपस्थित करती है—इसका पूर्वभाग अधिकतर परिकल्पित है, तथा उत्तर भाग, अर्थात् आद्य मध्यकालीन भाग, वास्तविक इतिहास है। यह कश्मीर की गिरती हुई ख्याति-राजगृह में षड्यन्त्र, हत्याएं, राजद्रोह, अन्तर्युद्ध तथा विश्वासघात का सजीव वर्णन करती है। सामान्य जन जीवन को छुआ तक नहीं है। "राजाओं की नदी", शीर्षक का औचित्य प्रदर्शित करता हुआ, यह राजाओं, राजकीय परिवारों तथा सम्भ्रान्त वर्ग का इतिहास है।

रूपांतर : किरण शर्मा

कश्मीर की झीलें और उद्यान

(पृष्ठ 8 का शेष)

के अवशेष देखे जा सकते हैं।

कश्मीर में वेरीनाग का झरना एक ऐतिहासिक स्थान है। जहांगीर ने इस झरने के लिए अष्टभुजाकार हौज और तोरणपथ बनाने का आदेश दिया था। इसके इर्द-गिर्द बाग लगवाया गया। 1626 ई० में इस झरने पर शराब की भारी दावत हुई थी। जहांगीर वापस लौटते समय बीमार पड़ गया और उसने इच्छा प्रकट की कि मरने के बाद वह वेरीनाग में दफनाया जाए। परंतु बादशाह की ये इच्छा पूर्ण न हो सकी क्योंकि मलिका नूरजहां जल्दी से जल्दी लाहौर पहुंचना चाहती थी।

सबसे मुक्त कंठ से कश्मीर के बागों की सुन्दरता की सराहना की है। इसके अतिरिक्त इन बागों में फारस, मध्य-एशिया और भारत की उद्यानकला का सुखद सम्मिश्रण देखने को मिलता है।

रूपांतर : चरणजीत राय शर्मा

compiled and created by Bhartesh Mishra

कश्मीरी कलाएं और दस्तकारी

गब्बा रचना कार्य

compiled and created by Bhartesh Mishra

सनबार

सुराही

compiled and created by Bhartesh Mishra

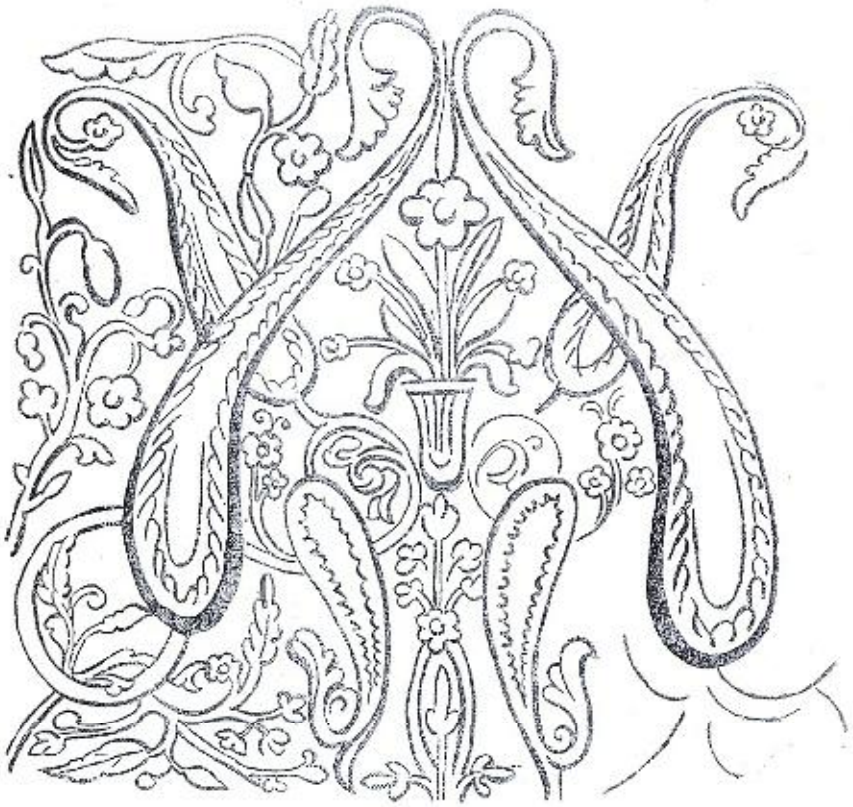

बादाम मोटिफ

मजार-पोश

compiled and created by Bhartesh Mishra

टीका-माथे का आभूषण

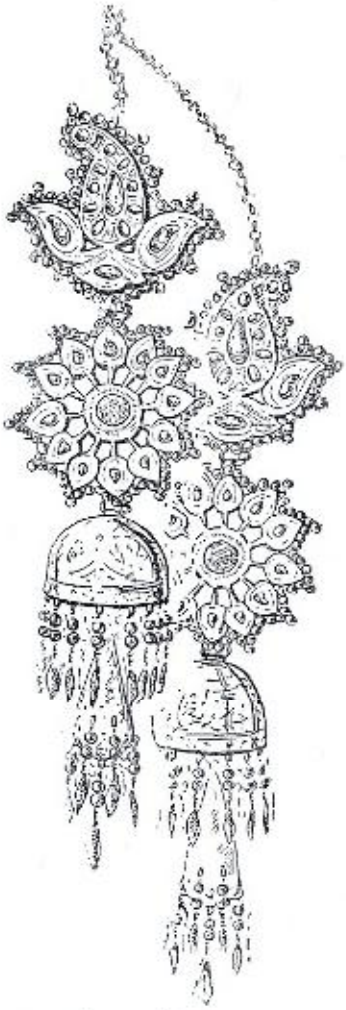

अलका-होर कानों का आभूषण

गले का आभूषण

compiled and created by Bhartesh Mishra

स्वप्निल नयन वाली महिला - अखनूर से प्राप्त टेराकोटा

compiled and created by Bhartesh Mishra

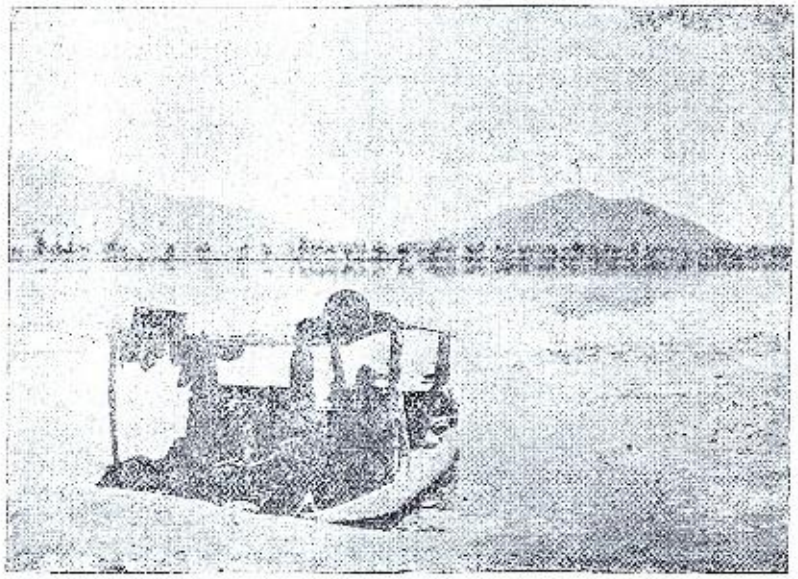

डल झील

कश्मीर की झीलें और उद्यान

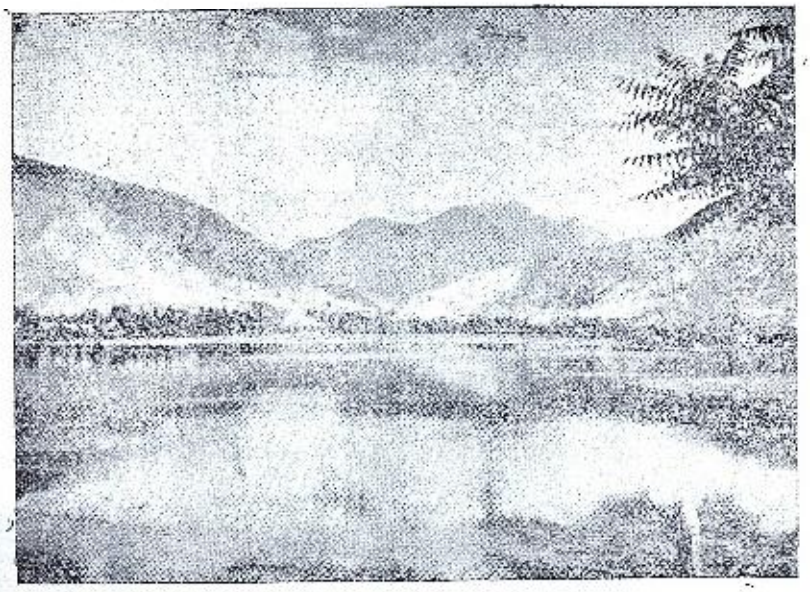

मानसबल झील

चश्मा शाही

compiled and created by Bhartesh Mishra

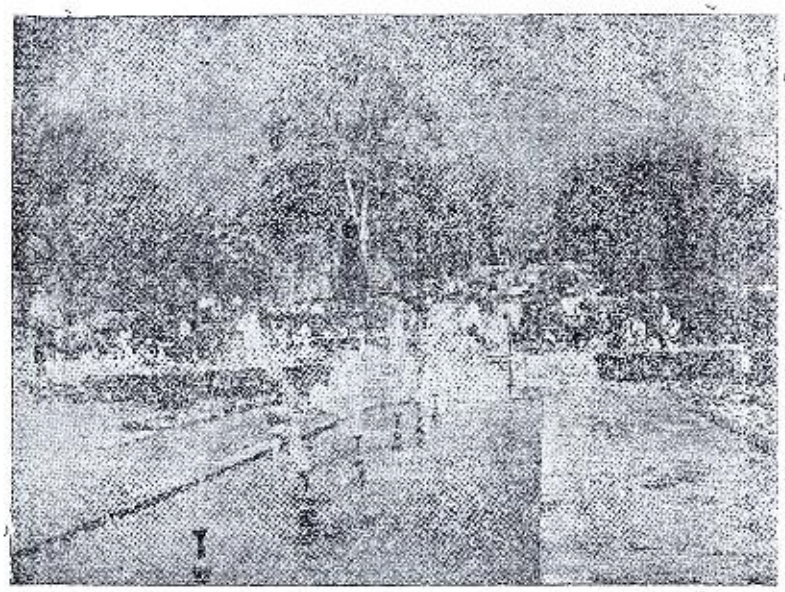

बिशात बाग

शालीमार बाग

डल झील पर शिकारे और हाऊस बोट

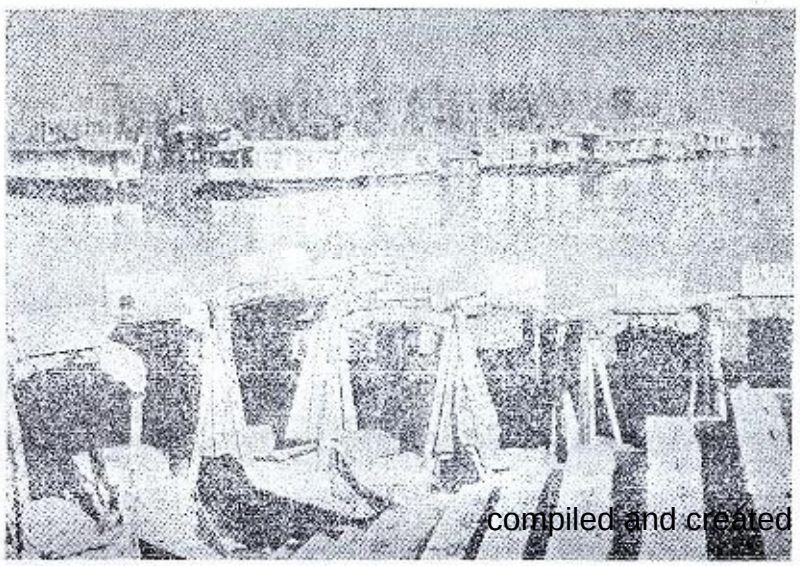

compiled and created by Bhartesh Mishra

राजा सूरतसेन का चित्र-नैनसुख (जम्मू कलम) द्वारा चित्रित

पहाड़ी लघु चित्रकला

बसहोली, नायावशेष महल

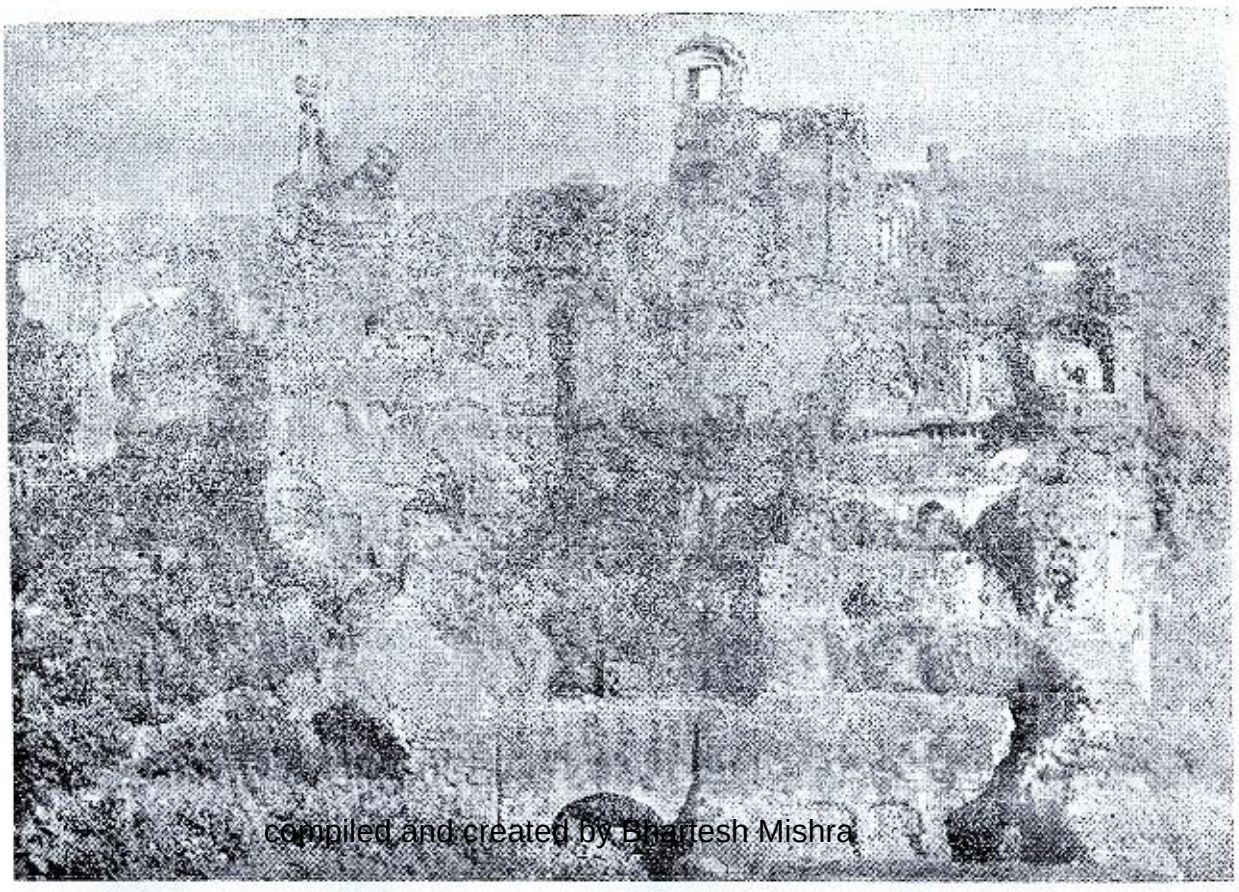

compiled and created by Bhartesh Mishra

देवता की उपासनारत महाराजा
सरूप सिंह-नन्दलाल (जम्मू कलम द्वारा चित्रित)

प्रेमी रसमंजरी का चित्रण बसहोली, 1695 ई०

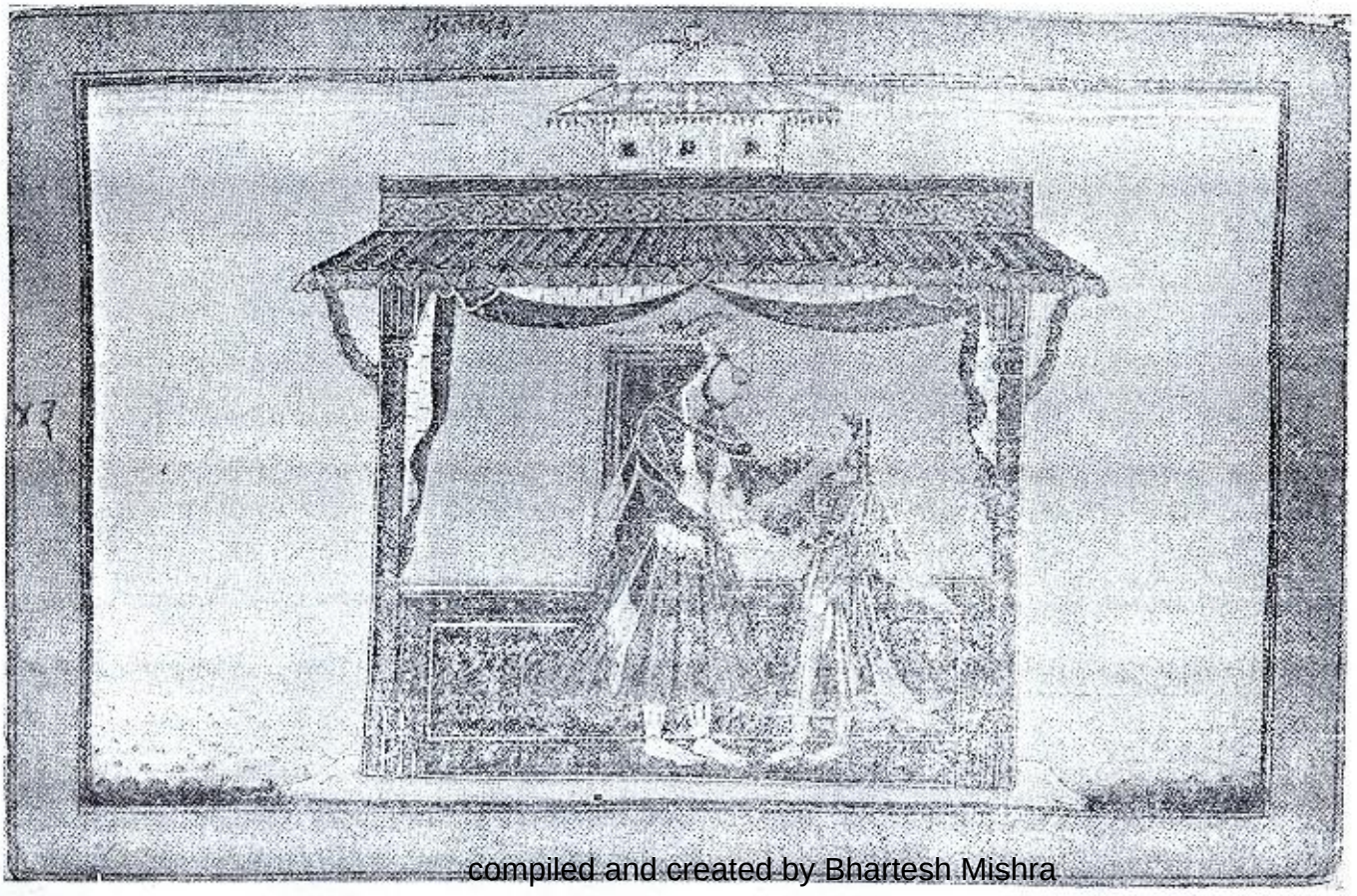

compiled and created by Bhartesh Mishra

त्रिक शास्त्र की कहानी

प्राचीन काल में अनेकों शताब्दियों तथा मध्यकालीन इतिहास में धार्मिक दर्शन की विशद पद्धति के रूप में विकसित कश्मीरी शैवमत, कश्मीर की घाटी में त्रिकशास्त्र (तिहरा विज्ञान) या साधारणत: त्रिक (दि ट्राइड) के नाम से विख्यात है।

कोई भी दर्शन किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज नहीं रहा है। दर्शन की सभी पद्धतियों का विकास क्रमिक पीढ़ियों के मस्तिष्क द्वारा दीर्घकाल में शनैः शनैः हुआ है और उपयुक्त समय पर इन पद्धतियों ने निश्चित दर्शन पद्धतियों का रूप ग्रहण किया है। यद्यपि कश्मीरी शैवमत की नींव वासु गुप्त द्वारा नवीं शताब्दी में डाली गई थी परन्तु इस दर्शन के चिन्ह ईसा पूर्व युग में पर्याप्त समय पहले सृजित साहित्य में भी देखे जा सकते हैं।

कल्हण ने अपने प्रसिद्ध इतिहास राजतरंगिणी में बौद्धधर्म के आगमन के बहुत पहले समय के विभिन्न रूपों में शिवमंदिरों तथा अन्य पूजाघरों का वृत्तांत दिया है। कुछ शोधकर्ताओं ने सुमेरी राजपुरोहित गुदिया की मिट्टी की पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों में शैव मत के मुख्य सिद्धांत पढ़े हैं। यह खोज विश्वसनीय हो अथवा न हो किन्तु इतना अवश्य प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन काल में साधू महात्मा शैवमत के आधार-भूत सिद्धांतों से परिचित थे। सोमनन्द (जिसका जीवन-काल नवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है) ने अपने ग्रन्थ 'शिव दृष्टि' में त्रिकशास्त्र की रूपरेखा दी है। यह

प्रेमनाथ बजाज

रूपरेखा त्रिकशास्त्र के इतिहास का सबसे पहला वृत्तांत है। सोमनंद ने यह दावा किया है कि त्रिकशास्त्र का प्रणयन उसके जन्म से बीस पीढ़ियां (या लगभग 800 वर्ष) पूर्व किया गया था। सोमनंद ने उन महा विद्वानों का भी वर्णन किया है जिन्होंने वसु गुप्त (जिसने मेरे जन्म से मात्र एक सौ वर्ष पूर्व त्रिक दर्शन का सुगठित तथा सुनिश्चित रूप प्रस्तुत किया) से पहले त्रिक दर्शन के विकास में योगदान किया।

बहरहाल, आरम्भ में शैवमत एक ऐसे साधारण धार्मिक पंथ से अधिक नहीं था जिसके कुछ मातग्रह तथा धर्म-सिद्धांत थे, जिनमें उसके अनुयायियों का पूरा विश्वास था। जिस अंतिम रूप में त्रिक शास्त्र आजकल जाना जाता है, इस रूप के विकास में बहुत समय लगा।

विभिन्न सभ्यताओं का मिलन-स्थल

विभिन्न जातियों के प्रदेशों से घिरी हुई होने के कारण कश्मीर की घाटी एक केन्द्रीय स्थान है अत: यह अनंतकाल से विभिन्न लोगों तथा सभ्यताओं का मिलन स्थल रही है। कश्मीर की घाटी में चारों दिशाओं से विचार बीज आए और उसकी उपजाऊ भूमि में मिश्रित होकर सुन्दर पौधों के रूप में प्रस्फुटित हुए जिन पर रंग बिरंगे सुगंधित फूल खिले। मुस्लिम-पूर्व काल में लगभग एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक कश्मीर की घाटी को हिन्दू संसार में एक विद्यापीठ के रूप

compiled and created by Bhartesh Mishra

में माना जाता रहा जहां भारत के कोने-कोने, और अफगानिस्तान मध्य एशिया से काव्य शास्त्र, संगीत, धर्म, खगोल, विज्ञान, दर्शन तथा अन्य विषयों के अध्ययन के लिये सैकड़ों विद्यार्थी आते थे।

तीन विचार धाराएं

शैवमत बौद्धयुग से पहले अपनी आदि अवस्था से विकसित हुआ और उसने दार्शनिक रूप ग्रहण किया। शैवमतों का विभाजन उनके विषयानुसार तीन वर्गों में किया गया था। उनके विषय थे: अद्वैतवाद, द्वैतवाद या द्वैताद्वैतवाद जिनकी रूप रेखा क्रमशः तीन मुख्य आचार्यों-त्रिम्बक, अमरदक तथा श्रीनाथ ने प्रस्तुत की थी। इस प्रकार तीन शैव तांत्रिक विचार धाराओं का जन्म हुआ जिनमें से प्रत्येक तीनों चिंतकों के नाम से विख्यात हैं।

त्रिक शास्त्र

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक ने कश्मीर की घाटी को जीतकर अपने विशाल साम्राज्य में मिला लिया। उसने स्थानीय नागा बुद्धिजीवियों की सहायता से विजित प्रजा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया और वह ब्राह्मण धर्म का महत्व कम करने में सफल हुआ। थोड़े दिनों में बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय बन गया और बौद्ध दर्शन ने कश्मीरियों के राजनैतिक, बौद्धिक तथा सामाजिक जीवन को सर्वाधिक प्रभावित रखा।

फिर भी, पैतृक धर्म का उन्मूलन नहीं किया जा सकता और बौद्ध धर्म के प्रभुता काल में भी उसका महत्व बना रहा। समय परिवर्तन के साथ जब ब्राह्मण धर्म के कट्टर अनुयायियों के हाथ शक्ति आयी, तब उन्होंने पुरातन परम्पराओं को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसके कारण बौद्धिक उत्थान हुआ और मूलतः परस्पर विरोधी दो धार्मिक दर्शनों में संघर्ष शुरू हो गया। लेकिन तत्कालीन चिंतकों ने उक्त तनाव को दूर करने के लिये अपने क्रियात्मक विचार सामने रखे और जीवन का एक नवीन दर्शन उदय किया। इस दर्शन का नाम त्रिक है जो भारतीय दर्शन के मूलभूत सिद्धांतों तथा कश्मीरियों के अपने ही चिंतन, प्रेक्षण तथा अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान का संश्लेषण है।

त्रिक की उत्पत्ति

इतिहासकार-दार्शनिक क्षेमराज ने त्रिक की स्थापना के तत्कालीन कारणों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार आठवीं शताब्दी में कश्मीर की घाटी में दो परस्पर विरोधी दार्शनिक विचार-धाराएं चल रही थीं। एक विचारधारा का नेतृत्व बौद्ध धर्म के आचार्य नागा बोधि ने किया और उसके सुशिक्षित अनुयायियों ने शून्यवादी सिद्धान्तों की शिक्षा दी, वह नास्तिकम पुरस्सर (शून्यवादियों के अग्र गण्य नेता) और आत्मेश्वर निरोधक (आत्मा और ईश्वर के विरोधी) नाम से विख्यात है।

दूसरी विरोधी विचारधारा द्वैतवाद के कट्टर अनुयायियों (नरेश्वरभेदवादिन) की थी जिनके अनुसार यह माना जाता था कि मनुष्य और ईश्वर अनंतरूप से एक दूसरे से भिन्न हैं। क्षेमराज ने इस बात का उल्लेख किया है कि उपर्युक्त परस्पर विरोधी विचार धाराओं के कट्टरपंथियों में बार-बार संघर्ष हुए और इन संघर्षों से उठी धूल ने शैवमत के अद्वैत वादी रहस्यों पर पर्दा डाल दिया और उसके अस्तित्व को खतरा पहुंचाया। यह वासु गुप्त ही था जो उन परिस्थितियों में सामने आया और दोनों विचारधाराओं पर दोषारोपण करते हुये कहा कि ये दोनों ही विचारधाराएं अपूर्ण तथा पथ भ्रष्ट हैं। इसने 'शिव सूत्र' प्रस्तुत किए जो अद्वैत आदर्शवाद के उन सत्यों का संग्रह था जिनकी रूप रेखा विद्वतापूर्ण ढंग से संक्षेप में दी गई थी।

वासुगुप्त ने शैव सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं :

वासुगुप्त द्वारा शैवमत को अंतिमरूप (जिस रूप में वह आजकल विख्यात है) दिए जाने से पहले, शैवदर्शन सांख्य तथा बौद्धधर्म से अत्याधिक प्रभावित था। उस समय शैव दर्शन भौतिकवादी विचारोन्मुख था। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि शंकर दिग्विजय के अनुसार इस बात की पुष्टि हो चुकी है महान पुनरुद्धारक दार्शनिक शंकराचार्य नवीं शताब्दी की दूसरी दशाब्दी में अपने अखिल भारतीय पर्यटन के दौरान कश्मीर की घाटी में गए थे। शंकराचार्य के द्वारा ही शैव दर्शन में मूल परिवर्तन किया गया और उसे अधिकाधिक आस्तिक तथा वेदान्तोन्मुख बनाया गया। इस घटना के तुरन्त बाद वासुगुप्त ने शिवसूत्रों की रचना की।

वासुगुप्त के एक शिष्य ने शिवसूत्रों की उत्पत्ति के बारे में एक मनोरंजक वर्णन दिया है। कहा जाता है कि जब महापुरुष (वासुगुप्त) को शून्यवादियों तथा द्वैतवादियों के कटुकथनों से क्षुब्ध होकर बेचैन दिन और निद्रारहित रातें गुजारनी पड़ीं तब शिव को अपने भक्त पर दया आयी और उसे स्वप्न में दर्शन देकर शिवसूत्रों के स्थान के बारे में रहस्योद्घाटन किया और कहा कि महादेव पहाड़ी के नीचे हरवान के निकट एक चट्टान पर शिवसूत्र अंकित है जहां वासुगुप्त निवास करता था। जगने के बाद वासुगुप्त ने उस स्थान पर जाने, शिवसूत्रों की नकल करने और उसके सिद्धांत प्रस्तुत करने में विलम्ब नहीं किया। आधुनिक पुराविदों ने पुरातन परिपाटी की सहायता से शंकरपाल नामक चट्टान का पता लगा लिया है परन्तु उस पर शिलालेख कहीं भी नहीं मिला है। बड़े आश्चर्य की बात है कि चट्टान पर शिलालेख जैसी कोई वस्तु मिली होगी।

यह ध्यान रखा जाए कि क्षेमराज ने इसका पृथक वर्णन दिया है। वह लिखता है कि इस कथन में कोई सत्य प्रतीत नहीं होता कि शिवसूत्र चट्टान पर अंकित मिले थे। उसके अनुसार ये शिवसूत्र वासुगुप्त को स्वप्न में स्वयं शिव ने बताए। सत्य कुछ भी हो लेकिन यह बात निर्विवादास्पद है कि शिव सूत्रों ने ही कश्मीरी अद्वैत शैव दर्शन त्रिक शास्त्र की नींव रखी। बहरहाल वासुगुप्त ने शैव दर्शन के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों की रचना की। यह काम वासुगुप्त के शिष्यों (जिनमें कल्लट सर्वाधिक प्रसिद्ध है) के लिये छोड़ दिया गया था कि वे शिवसूत्रों का ज्ञान उन पर व्याख्यात्मक निबंध लिखकर प्रसारित करें।

त्रिक के बुनियादी सिद्धान्त

जैसा कि नाम से संकेत मिलता है त्रिक शास्त्र में तीन विषयों का विवेचन किया गया है। ये विषय हैं (क) मनुष्य, (ख) विश्व और (ग) नित्य परिवर्तनशील वस्तुओं में व्यवस्था, संतुलन तथा सामंजस्य बनाए रखने वाला सिद्धांत। कुछ लेखकों का मत है कि त्रिक शास्त्र में (क) अनुभव का विषय, (ख) अनुभव और (ग) अनुभव की वस्तु के बारे में विवेचन किया गया है। कुछ अन्य लेखक यह मानते हैं कि त्रिक शास्त्र में तीन तत्वों का विवेचन है। ये हैं शिव, शक्ति और नर। लेकिन कुछ और लेखकों का कथन है कि त्रिक शास्त्र ने परमसत्य के विषय में तीन मत प्रस्तुत किए हैं। ये हैं—भेद, अभेद और भेदाभेद।

उपर्युक्त कारणों से त्रिक तथा अद्वैत में बहुत कुछ समानता है परन्तु कश्मीरी दार्शनिकों ने शंकर की शिक्षाओं से पूर्णतः प्रभावित

compiled and created by Bhartesh Mishra

होना सुकृतापूर्वक अस्वीकार कर दिया है । त्रिक शास्त्र ने अपना व्यक्तित्व अक्षुण्य बनाए रखा है । त्रिकशास्त्र न तो वेदों तथा उपनिषदों के अमोघत्व या अनंतता में विश्वास करता है और न ही विश्व की मौलिक सत्ता को अस्वीकार करता है । त्रिकशास्त्र की उक्त प्रवृत्ति सांख्य तथा बौद्ध दर्शन के अनुरूप है जिनसे कश्मीरी शैवमत ने अपने बहुत सारे विश्वास प्राप्त किए । त्रिकशास्त्र के प्रस्तुत कर्ता अपनी चर्चाओं में तर्क तथा अनुभव को पहला स्थान देते हैं और शास्त्रों की अधिकारिता को दूसरा वेदान्त से भिन्न, त्रिक शास्त्र यह मानता है कि दृष्टिगोचर विश्व सत्य है क्योंकि यह परमेश्वर की ही अभिव्यक्ति है और इसलिये यह परम सत्य का एक पहलू है । परमेश्वर के बाहर किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं हो सकता और इसलिये कोई दृष्टिगोचर वस्तु असत्य या भ्रामक नहीं हो सकती । शंकर का मायावाद त्रिकशास्त्र के शिक्षकों को स्वीकार्य नहीं है ।

त्रिक शास्त्र के अनुसार आत्मा और प्रकृति दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं अपितु दो रुपों में एक ही वस्तु है । आत्मा ही प्रकृति है और जैसा कि आमतौर पर विश्वास किया जाता है, प्रकृति जड़ नहीं है । प्रकृति आत्मा का ही एक रूप होने के कारण चेतन है अन्तर केवल आत्मा के चेतनांश का है । प्रकृति के जड़ तथा चेतन पदार्थों में हमें जो अन्तर दिखाई देता है वह चेतनांश के अन्तर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इस चिंतन के अनुसार जीव और प्रकृति मूलतः एक ही है । वे एक दूसरे का रूप ग्रहण कर सकते हैं ।

त्रिक केवल एक परमसत्य अर्थात् ऐसी एकता में विश्वास करता है जो जड़ चेतन पदार्थों के समस्त विश्व में व्याप्त है । इसे परम शिव अर्थात् विश्व चेतना की संज्ञा दी गई है जो स्वतः प्रकाशित है और विश्व के जड़ चेतन सभी पदार्थों को प्रकाशित करता है । प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति इसी प्रकाश से होती है और अंत में इसी में विलीन हो जाती है । इस सत्य के दो पहलू हैं प्रकाश और विमर्श एक अस्तित्व है और दूसरा इस अस्तित्व का ज्ञान है ।

परिवर्तन का दर्शन

त्रिक के अनुसार परिवर्तन विश्व का सर्वप्रथम नियम है । शरीर, मन तथा जीवात्मा में क्षण-क्षण परिवर्तन होता रहता है । एक अल्पक्षण के लिये भी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती । परन्तु इस परिवर्तन प्रक्रिया से अप्रभावित रहने वाली एक ही वस्तु है और वह है चेतना जो अनंत है और नित्य परिवर्तनशील सभी वस्तुओं की साक्षी है । त्रिक शास्त्र के अनुसार यही चेतना का केन्द्र बिन्दु है । परिवर्तनशील शरीर, मन और जीवात्मा तथा ब्रह्मांड का अपरिवर्तनशील साक्षी शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं है । केवल शिव ही सर्वशक्तिमान है—दूसरा नहीं । शिव ही एकमात्र सत्य है जो अपरिवर्तनशील, अविनाशी और अनंत चेतना है, शिव के अन्य भी गुण हैं, जैसे सर्वव्यापकता और निराकरता परन्तु निर्बाध स्वतंत्रता उसकी मुख्य विशेषता है ।

मनुष्य के दुःखों तथा कष्टों का कारण उसकी अज्ञानता है । मनुष्य अपने आपको शरीर, मन या जीवात्मा या इससे भी बदतर अपनी सम्पत्ति समझता है । जब तक मनुष्य अपने आपको उक्त वस्तुओं के अनुरूप समझेगा तब तक वह न तो प्रसन्न ही रह सकता है और न ही उसे वह आध्यात्मिक सुख मिल सकता है जिसके लिए वह अन्यथा अधिकारी है । शिवसूत्रों में कहा गया है कि "हमारा बंधन हमारी अज्ञानता के कारण ही है ।" क्षेमेन्द्र ने शिवसूत्रों की टिप्पणी में कहा है कि "यद्यपि आत्मा अनंत चेतना है फिर भी मनुष्य यह सोचता है कि मैं क्षणिक हूँ । स्वतंत्र होते हुये भी मनुष्य यह सोचता है कि मैं क्षणिक शरीर हूँ ।" मनुष्य यह भूल जाता है कि यह विश्व शिव में विद्यमान है और आत्मा शिव के तद्रूप है । "त्रिक शास्त्र का उद्देश्य मनुष्य के ज्ञान चक्षु खोलना है कि साक्षीआत्मा विश्व के सर्वशक्तिमान शिव से भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं है ।"

कश्मीरी चिंतकों ने भारतीय दर्शन की पूर्ववर्ती पद्धतियों का विश्लेषण करते समय उपनिषदों-वेदांत द्वारा प्रस्तुत नकारवाद, पलायनवाद तथा अभावुकतावाद के शुष्क अंशों को प्रयत्नपूर्वक बहिष्कार कर दिया । उन्नायक कारण कर्म तथा उपादान कारण-प्रकृति का अस्तित्व भी स्वीकार नहीं किया गया है । शिव पूर्ण स्वतन्त्र है और वह संसार के सभी पदार्थों को मात्र अपनी इच्छाशक्ति द्वारा उत्पन्न करता है । वह इस संसार को दर्पण में दिखलाता है । ईश्वर अपने द्वारा उत्पन्न सभी पदार्थों से उसी प्रकार अप्रभावित रहता है जिस प्रकार कि दर्पण अपने में प्रतिबिम्बत आकृतियों से (भारतीय दर्शन, डा० राधाकृष्णन, खण्ड II पृष्ठ 732) शिव भैरव तथा काल भी है परन्तु साथ ही साथ वह असीम प्रेम भी है ।

निरपेक्ष अद्वैतवाद

निरपेक्ष अद्वैतवाद, विचारों की महानता तथा मौलिकता त्रिक दर्शन की विशेषता है । जैसा कि स्पष्टतया कहा जा चुका है । "शिव विषय, अनुभव तथा अनुभवगत वस्तु है" (स्पन्द कारिका) । त्रिक दर्शन वस्तुतः एक आदर्शवादी दर्शन है जिसकी कसौटी विश्लेषण और तर्क नहीं है । फिर भी त्रिक शास्त्र विश्व की वास्तविकता तथा वस्तुनिष्ठ यथार्थता से मुख नहीं मोड़ता । त्रिक एक विभिन्न दर्शन ग्राही शास्त्र है । यह शास्त्र वेदांत, सांख्य, वैशेषिक, न्याय तथा बौद्धचिंतन में स्वीकार्य सिद्धांतों का एक मिश्रण है । इस शास्त्र में वैष्णव और शास्त्र मूल शिक्षाएं विशेषतः ईश्वरीय प्रेम के सिद्धांत तथा अपने प्रियतम के लिये अनन्य भक्ति भी शामिल है । लेकिन त्रिक शास्त्र आंतरिक संवेगों के अभद्रकरण का विरोध करता है । यह शास्त्र आत्मज्ञान के लिये, जैसा कि अनेकों हिन्दूमतों में आमतौर पर प्रचलित है, आत्मदमन और तपस्या का कोई उपयोग नहीं समझता । यह शास्त्र उद्देश्य पूर्ण जीवन में विश्वास करता है । रवीन्द्र नाथ के शब्दों में "त्रिक शास्त्र ने जीवित विचारों की इतनी गहराई में प्रवेश किया है जहां मानवीय बुद्धिमत्ता की विभिन्न धाराओं का ज्योतिर्मय संगम हुआ है ।"

त्रिक शास्त्र के प्रस्तुत कर्ताओं ने सत्य का उल्लेख करने के पश्चात् शरीर के बंधन से मुक्त होने के उपाय बताए हैं । संक्षेप में ये उपाय चार हैं : पहला आनन्दोपाय है जिसमें परमेश्वर की विशेष कृपा शामिल है, दूसरा इच्छोपाय है जिसमें मिथ्या इच्छाओं के नष्ट करने और सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति के मुक्त होने की प्रबल इच्छा शामिल है । शक्तोपाय तीसरा उपाय है जिसमें योग-अभ्यासों का उल्लेख है ; अंतिम उपाय के अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों यथा ध्यान, परमात्मा के नाम का सतत जप तथा अन्य ऐसे आनंदमय अभ्यासों से विश्वास करना होता है जिनमें जनग्रहात्मकता दमनात्मक कोई तत्व नहीं होता ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन उपायों को लिंग, जाति वर्ण रंग आदि के बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्य अपना सकते हैं । वास्तव में इस बात पर बल दिया जाता है कि समान उपायों द्वारा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां शीघ्र मोक्ष प्राप्त करती हैं । त्रिक शास्त्र में अपने विचारों के विरोधी विचारों को दमन करने का बार-बार निषेध किया गया है ।

compiled and created by Bhartesh Mishra

वृहत साहित्य

कोई समय था जबकि कश्मीर की घाटी में त्रिक शास्त्र की विभिन्न शाखाओं पर पुस्तकों, शोध प्रबन्धों, सार-संग्रहों, प्रबन्धों तथा निबन्धों के रूप में एक बृहत साहित्य प्रचलित था। गत शताब्दियों में समय की लहर तथा असभ्य व्यक्तियों द्वारा इस साहित्य का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। लेकिन जो पुस्तकें नष्ट होने से बच गई और जो हमें प्राप्त हुई हैं, उनमें इस त्रिक दर्शन के मूल सिद्धांतों पर महान शिक्षकों द्वारा व्यक्त विचारों और भावों के दर्शन होते हैं। संसार को कश्मीर के शैवमत की जानकारी कश्मीर सरकार के अनुसंधान विभाग के दीर्घकालीन तथा सतत प्रयासों द्वारा हुई है। उक्त अनुसंधान विभाग ने शैवमत के वर्तमान साहित्य में से कुछ ग्रंथों (जिनकी संख्या 56 से कम नहीं होगी) का सम्पादन तथा प्रकाशन किया है जिनमें विभिन्न लेखकों के अलग अलग 64 ग्रंथ शामिल हैं।

मोटे तौर पर त्रिक साहित्य को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है --(क) आगम शास्त्र, (ख) स्पंद शास्त्र, (ग) प्रत्यविज्ञान शास्त्र, (घ) तंत्रशास्त्र और चूंकिज्ञान रहस्य में है, अतः यह ईश्वरीय स्रोत द्वारा केवल अधिकारी जिज्ञासुओं को ही दिया जाता है-- यह अगम शास्त्र है। इस वर्ग की पुस्तकें सामान्यतः शिव और शक्ति के बीच वार्तालाप के रूप में उपलब्ध हैं। स्पंद शास्त्र इस नित्य परिवर्तनशील ब्रह्मांड का विज्ञान है। इस शास्त्र के रचियताओं ने इस भाग की पुस्तकों में दो तथ्य शामिल किए हैं, पहला परिवर्तन करने वाले सिद्धांतों को ज्ञात करने के लिये नित्य परिवर्तन, दूसरा इससे संबंधित नियम परन्तु, त्रिकदर्शन का सार प्रत्यभिज्ञान शास्त्र में निहित है। इसको ईश्वर प्रत्य विज्ञान शास्त्र भी कहा जाता है।

इस शास्त्र का वृहत् साहित्य ज्ञान के प्रचार के लिये है। इस शास्त्र के अनुसार सत्य के जिज्ञासुओं की अज्ञानता दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। यह शास्त्र सत्य के जिज्ञासू को ब्रह्मांड में व्याप्त अमर, अविनाशी तथा अपरिवर्तनशील विश्व चेतना को पहचानने तथा जीवात्मा को उसके साथ तादात्म करने की शिक्षा देता है इस प्रकार जीवन का एक मात्र लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है और पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। लेकिन, कालांतर में जब कि त्रिक शास्त्र ने लोकप्रिय धर्म का स्थान ग्रहण किया तब इसमें अनेक कर्मकांडों का विधान शामिल हो गया। तंत्र शास्त्र में इन्हीं कर्मकांडों के विधान पर विचार किया गया है। दार्शनिक चिंतन के ह्रास के साथ-साथ कर्मकांडों की ओर अधिक ध्यान दिया गया। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दियों में ऐसे विषयों पर अनेकों पुस्तकें लिखी गयीं जिनमें से कुछ तो बेतुकेपन और बचकानी धारणाओं से परिपूर्ण है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कश्मीरी शैवमत पर प्राचीनतम पुस्तक "शिवसूत्र" है यह पुस्तक सूत्र पद्धति में लिखी गयी है जो सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों के लिये बोधगम्य नहीं है और अत्यन्त कठिन है। शिवसूत्र 'आगम भाग' से संबंधित है और त्रिक दर्शन के जन्मदाता के अनुयायी विचारकों तथा विद्वानों ने अनेकों टीका-टिप्पणियां तथा पाद-टिप्पणियां इस शास्त्र में शामिल कर दी है।

वासुगुप्त का सबसे प्रमुख शिष्य कल्लटभट्ट था। उसने नवीं शताब्दी के मध्य में शिवसूत्रों पर स्पंद कारिका तथा स्पंदवृत्ति नामक दो टीकाएं लिखी ताकि त्रिक दर्शन समझने में कुछ सरल हो जाए। भास्कर ने भी (जिसका जीवन काल उसके एक शताब्दी बाद का है) मूल शिव सूत्रों पर एक भिन्न दृष्टिकोण से टीका लिखी और उसने अपने विचारों की अधिकारिता का दावा किया क्योंकि उसने ये विचार उत्तराधिकार के रूप में परम्परागत निर्देशन द्वारा प्राप्त किये थे। लेकिन स्पंदशास्त्र पर सबसे अधिक क्षेमराज ने लिखा। क्षेमराज ने अपनी पुस्तक विमर्शिनी में शिव सूत्रों पर टीका लिखी। विमर्शिनी इतनी सुबोध, स्पष्ट तथा पांडित्यपूर्ण पुस्तक है कि कोई भी अन्य टीकाकार आजतक शिवसूत्रों पर ऐसी टीका नहीं लिख सका है। क्षेमराज ने और भी अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से मुख्य ये हैं-- (1) स्पंद दोहा (2) स्पंद निर्णय (3) प्रत्यभिज्ञान हृदयम्। उसने आगमशास्त्र की दो पुस्तकें उदाहरणार्थ विज्ञान भैरव तथा स्वच्छंद तंत्रम् पर भी टीकाएं लिखीं।

प्रत्यभिज्ञान के आचार्य

त्रिक दर्शन की स्थापना के लगभग एक सौ वर्ष बाद सोमनंद का युग आया। सोमनंद एक प्रतिभाशाली आचार्य थे जिन्होंने त्रिक दर्शन के प्रत्यभिज्ञान अंग पर अधिक बल दिया। इसके कारण ही सोमनंद को इस दर्शन के वास्तविक स्थापक के रूप में स्वीकार किया जाता है उपर्युक्त उनकी पुस्तक 'शिवदृष्टि' में व्यक्त उनके ओजस्वी विचारों ने विद्वानों को शताब्दियों तक प्रेरित किया और अनेकों लेखकों को उस पर टीकाएं लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। सोमनंद ने इन विचारों को एक अन्य पुस्तक "ईश्वर प्रत्यभिज्ञान" में सविस्तार व्यक्ति किया। उक्त पुस्तक गुणों में 'शिवदृष्टि' से कम नहीं है, बहरहाल उसमें एक गुण और अधिक है और वह है उसकी सरल भाषा। 'शिवदृष्टि' पर सर्वश्रेष्ठ टीका उत्पल नामक विद्वान ने लिखी जिसका जीवन काल दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में था। उसकी दो पुस्तकों यथा प्रत्यभिज्ञा और स्तोत्रावली को शैवमत पर अधिकारिक पुस्तकें माना जाता है। उत्पल के अन्य दार्शनिक ग्रंथ ये हैं (1) अजड प्रमात्रि सिद्धि (2) ईश्वर सिद्धि और (3) संबंध सिद्धि। उत्पल की प्रतिभा इस बात में थी कि उसने साधना मार्ग में ज्ञान और भक्ति का समामेलन किया। उत्पल ने कार्य को ही उपासना माना है। वह निष्क्रियता सिद्धांत का विरोधी था। उत्पल का मत था कि ईश्वरानुभूति उसके साक्षात् दर्शन द्वारा इस प्रकार की जाए कि मानो कोई बिछुड़ा हुआ मित्र मिला हो, न कि उसके विषय में पढ़कर या सुनकर या चिंतन दर्शन द्वारा की जाए। उत्पल कहा करता था कि ईश्वर की पहचान साक्षात् स्पष्ट तथा निर्मल होनी चाहिए।

अभिनवगुप्त

दसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में अभिनवगुप्त का उदय हुआ जो अनेक बातों में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से आगे निकल गया और जिसने कश्मीर के आदर्शवादी दार्शनिकों में मूर्धन्य स्थान ग्रहण किया। अभिनवगुप्त एक मौलिक चिंतक, प्रतिभाशाली टीकाकार और कर्मकांडी था। उसकी रुचि त्रिक शास्त्र तक ही सीमित नहीं थी अपितु उसका क्षेत्र साहित्य की विभिन्न शाखाओं तक विस्तृत था। शैव दर्शन का बहुश्रुत प्रतिपादक होने के साथ-साथ, वह एक संगीतज्ञ और साहित्यिक आलोचक भी था। अभिनव गुप्त की चतुर्मुखी प्रतिभा द्वारा नाट्यशास्त्र, अलंकार शास्त्र तथा काव्य शास्त्र पर अनेकों पुस्तकों का सृजन हुआ। अभिनवगुप्त का जन्म सन् 950-960 ई० के बीच हुआ था और वह पूर्ण वृद्धावस्था तक जीवित रहा। उसने 30 पुस्तकों से भी अधिक पुस्तकें लिखीं।

compiled and created by Bhartesh Mishra

अभिनव गुप्त को उसकी युवावस्था में ही तत्कालीन भारत में पल्लवित सभी शैवमतों उदाहरणार्थ सिद्धांत, वाम, भैरव, यमल, कुल त्रिक, एकवीर आदि का आध्यात्मिक गुरु स्वीकार कर लिया गया था ।

अभिनव गुप्त के दार्शनिक ग्रंथों में मौलिक तथा प्राचीन आचार्यों की पुस्तकों पर लिखी गई संदीपन टीकाएं शामिल हैं । उसकी प्रसिद्ध पुस्तक तंत्रलोक को कश्मीर के अद्वैत आदर्शवाद का विश्वकोश माना जाता है । इस पुस्तक में 5800 छंद हैं और 37 अध्याय हैं । परन्तु यह पुस्तक गूढ़ रहस्यपूर्ण तथा शुष्क है और इसे समझने में भारी तर्क तथा समझदारी की आवश्यकता है । इस पुस्तक के उन गहन रहस्यों को जिन्हे लेखक उद्घाटित करना चाहता है केवल ऐसे ही विद्वान समझ सकते हैं, जिन्हें विभिन्न दर्शन-शास्त्रों तथा कर्मकांडों का यथेष्ट ज्ञान हो, ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनवगुप्त अपनी इस पुस्तक की दुरुहता से अवगत था, इसलिए तो उसने एक विशाल तथा कठिन ग्रंथ की भूमिका के रूप में एक लघु पुस्तक 'तंत्रसार' संकलित करने का कष्ट किया था । इसने नौसिखिया के लिये उक्त पुस्तक पढ़ने का सुझाव दिया था । यह पुस्तक सरल भाषा में लिखी गई है और इसमें विचार भी सरल रूप में व्यक्त किए गए हैं । अभिनवगुप्त की दूसरी पुस्तक का नाम 'परमार्थ सार' है जो त्रिक सिद्धांत की दृष्टि से सांख्य तथा वेदांत दर्शन का सराहनीय संश्लेषण है । आगम शास्त्र पर अभिनवगुप्त की दो प्रसिद्ध टीकाएं है : (1) मालिनीविजयोत्तर तंत्रम् और (2) परा त्रिशिका । सोमनंद की पुस्तक 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञान' पर लिखी गई उसकी ओजस्वी टीका का नाम 'विमर्शिनी' है जिसका महत्व उसकी मौलिक पुस्तकों से किसी भी प्रकार कम नहीं है । कुछ विद्वानों का मत है कि दार्शनिक ग्रंथ के मूल्य की दृष्टि से उक्त पुस्तक अभिनव गुप्त की अन्य किसी भी पुस्तक से अधिक महत्वपूर्ण है ।

त्रिक दर्शन का चरमोत्कर्ष

अभिनव गुप्त ने शैवमत के कर्म और कुल अंगों को परिपूर्ण करने का कार्य किया जो उससे पहले किसी आचार्य ने नहीं किया था । उसके ग्रंथों में त्रिक दर्शन चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था और भारतीय दर्शन शास्त्रों में समुचित स्थान प्राप्त कर चुका था ।

अभिनव गुप्त युवावस्था को जाने वाली सड़क पर स्थित भागम गांव के निकट रहता था । यह कहा जाता है कि अभिनव गुप्त 85 वर्ष का हुआ तो उसने अपने बारह सौ चुने हुए शिष्यों के साथ 'व्याप्त चराचर' शब्दों से आरम्भ होने वाले मधुर मंत्र (जिसकी रचना शिव की स्तुति में स्वयं अभिनव गुप्त ने की थी) का उच्चारण करते हुए भैरव नामक कंदरा में प्रवेश किया था जो उसके जन्म स्थान के निकटवर्ती पर्वत के मध्य में बनी हुई थी और उसके बाद वह फिर कभी दिखाई नहीं दिया । उस समय से उक्त मंत्र को बहुत महत्व मिला है और इसे धार्मिक आयोजनों विशेषत: कश्मीरी हिन्दुओं के राष्ट्रीय त्यौहार शिवरात्रि के अवसर पर गाया जाता है ।

अभिनव गुप्त के निधन के बाद कश्मीर की घाटी में मौलिक चिंतन में गत्यावरोध आया । इसका कारण यह था कि या तो शायद अभिनवगुप्त ने मौलिक चिंतन का स्तर अत्यन्त उच्च रखा था या फिर हिन्दू शासन के पतन ने सांस्कृतिक उत्थान को अवरुद्ध कर दिया था । पुस्तकों का लिखा जाना जारी रहा परन्तु अभिनव गुप्त के बाद ऐसा कोई भी लेखक नहीं हुआ जो कि त्रिक शास्त्र में मौलिक विचारों का समावेश करता । अभिनव गुप्त के बाद क्षेमेन्द्र, जयरथ और योगराज लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं । इस दिशा में मौलिक विचारों का योगदान करने वाले अंतिम कश्मीरी लेखक का नाम शिवोपाध्याय था, जिसने सन् 1775 ई० में 'विज्ञान भैरव' पर टिप्पणी लिखी ।

आजकल कश्मीर की जनता में अधिकांश संख्या मुसलमान लोगों की है जिन्हें त्रिकशास्त्र के विषय में कोई जानकारी नहीं है या जो उसके अध्ययन करने का कोई प्रयास नहीं करते हैं । लेकिन एक साधारण कश्मीरी का जीवन दृष्टिकोण और आचरण इस प्राचीन दर्शन के मुख्य सिद्धांतों से अब भी प्रभावित रहता है । असल बात यह है कि स्वयं इस्लाम ने त्रिकशास्त्र के सिद्धांतों के संपर्क में आकर कश्मीर की घाटी में संसार के शेष भागों से भिन्न एक अलग ही रूप धारण कर लिया है ।

रूपान्तर : प्रेम दास

compiled and created by Bhartesh Mishra

महजूर : उनका

गुलाम अहमद महजूर का जन्म सन् 1885 में, हिमावृत पर्वतों, वलखाती सरिताओं और छायादार वृक्षों के बीच स्थित, मिल्रगाम नामक एक गांव में हुआ था। उसके जन्म के समय पुराने सामन्तवादी शासन की छाया में, कश्मीर में अत्याचार हो रहे थे। उसी सुरम्य ग्राम में, नौ अप्रैल सन् 1952 को महजूर का देहावसान हुआ और वहां की स्थानीय सरकार द्वारा उनकी मृत्यु पर उचित प्रकार से शोक प्रकट किया गया। महजूर का बाल्यकाल देहात में ही व्यतीत हुआ था परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बाद में "शाजरा काश" के रूप में, जिस हैसियत में सन् 1916 में वह कश्मीर के "हाजन" में तैनात किए गए तथा पटवारी के रूप में उन्होंने घाटी के अन्य भागों को भी देखा, जिनमें श्रीनगर की संकरी और गन्दी गलियां भी शामिल हैं। वह अविभाजित पंजाब में भी आए, जहां पर वह कुछ श्रेष्ठ साहित्यिक व्यक्तियों से मिले, जिनमें बिसमिल का नाम उल्लेखनीय है।

बाल्यावस्था के प्रारम्भ में ही महजूर का झुकाव साहित्य की ओर हो गया था और उन्होंने फारसी व उर्दू में कविता की पंक्तियां लिखना प्रारम्भ कर दी थीं। फारसी और उर्दू ऐसी भाषाएं थी, जिनके द्वारा महजूर को शिक्षा प्राप्त हुई थी। इसीलिये उन्हें विशेष रूप से इन दो भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया

compiled and created by Bhartesh Mishra

काल एवं काव्य

गुलामनबी फिराक़

उन्होंने यह महसूस किया कि फारसी और उर्दू में पद्य लिखने की अपेक्षा उन्हें अपनी मातृभाषा—कश्मीरी में पद्य लिखने चाहिए। वह दो बातों के कारण इस प्रेरणा से प्रभावित हुए थे, एक तो उस समय, जब उन्होंने पंजाब का दौरा किया था, और दूसरी बार उस समय जब उन्होंने अपने प्रदेश में ही जनसाधारण का अध्ययन किया था। विशेष रूप से ग्रामों में रहने वाले उन लोगों का जिन तक उनकी मातृभाषा के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार इस शताब्दी के द्वितीय दशक के अंतिम वर्षों में, उन्होंने उसी भाषा में लिखने का निश्चय किया, जो वहां के लोगों द्वारा बोली जाती थी।

राष्ट्रों के इतिहास में, प्रत्येक काल युगान्तरकारी होता है। फिर भी उसके युग में एक काल ऐसा आता है, जो उसमें होने वाले परिवर्तनों के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है। महजूर ऐसे ही एक काल में थे। यह समय वह था जब, कश्मीरवासी सामूहिक रूप से जागृत हो गये थे तथा उन्होंने विदेशियों को यह जता दिया था कि, वे स्वयं पर शासन करने में समर्थ हैं। कश्मीर भी, इस जागृति के संघर्ष से अछूता नहीं रह सका। यहां पर भी नई शक्तियां पैदा हुई, और समस्त कश्मीर अभूतपूर्व रूप से हिल गया। सन् 1931 का महत्वपूर्ण विद्रोह इस जागृति का ही एक भाग था। इसलिये महजूर ने अपने चारों ओर क्रांतिकारी, आशावादी और व्यक्तियों को पाया जो अपनी स्थिति में परिवर्तन के लिये उठ खड़े

compiled and created by Bhartesh Mishra

हुए थे। व्यक्तियों के इस उत्साह ने उन्हें और अधिक उत्तेजित कर दिया, जिससे बाद में वह उन लोगों के प्रतिनिधि बन गए, और उन्होंने उनकी मूक भावनाओं को यह रूप दिया—

हे! बुलबुल!
तू पिंजरे में से रोती है, तुझे मुक्त करने के लिये यहां कोई नहीं;
साहस बटोर, अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझा।

देश भक्तिपूर्ण कविताएं :—

यह पद "एक बागवान को" नामक कविता से लिया गया है, जो उन लोगों के लिये एक लोकप्रिय कविता बन गई, जो जनसाधारण में इसे गाते हुए अपने भविष्य को पुनर्गठित करने के लिये आगे बढ़ रहे थे। इस आशावादी आन्दोलन ने, जनजीवन के लगभग सम्पूर्ण पहलुओं में, अनुप्राणित परिवर्तन करके, उन्हें सजीव और सौम्य बना दिया। महजूर का इस आन्दोलन से बड़ा निकट का संबन्ध था। उन्होंने एक ओर आन्दोलन में अतीत के गौरव की याद दिलाई, और दूसरी ओर उन्होंने नई आशाओं के प्रकाश गृह को इतना ऊपर उठा दिया कि, उसका प्रकाश चारों ओर फैल सके। उन्होंने कुछ कविताएं देशभक्ति प्रकृति की लिखीं जिसमें से एक कविता में उन्होंने वास्तव में, बड़ी ही कोशलता से, रसूल मीर को, जिसका वंशागत उत्तराधिकारी महजूर स्वयं को समझते थे, चन्दहड़ के बदले गन्धड़ नामक ग्राम की सुन्दरता की प्रशंसा के लिये दोषी ठहराया है। पैम्पोर के निकट स्थित, इस ग्राम में, हब्बा खातून नामक एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार ने जो युसुफ शाह चक नामक कश्मीर के अंतिम शासक की पत्नी थी, शरण ली थी। अधिकांशतः ये कविताएं लोगों के द्वारा बड़े आनन्द के साथ गाई और सुनाई जाती थी। इन कविताओं में महजूर ने, साम्प्रदायिक मेल-मिलाप, देशभक्ति, सामाजिक न्याय, और किसान सुधार के अतिरिक्त अन्य बातों पर भी जोर दिया। कश्मीरी भाषा में ऐसे पद पहले कभी नहीं लिखे गये थे। यद्यपि इन कविताओं में काव्य कला की कमी थी, फिर भी उनकी शैली में नवीनता थी और इस कारण यह अच्छी लगती थी। इन कविताओं में से कुछ में, कश्मीर के देहाती जीवन की प्रफुल्लता, सजीव हो गई है, जो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है, और जिस पर उनके पूर्ववर्तियों ने कभी ध्यान नहीं दिया था। महजूर की कुछ कविताओं में हमें कवि की सौन्दर्यपरक रुचि का बोध होता है। कुछ भी हो महजूर ने अपने आप को मात्र राजनीतिक नारों की कविताएं बनाने से ही संतुष्ट नहीं किया, और न उन्होंने अपने आप को राजनीति-प्रकृति की समस्याओं में उलझाया। वह, प्रमुख रूप से प्रेम के कवि, जैसा कि वह वास्तव में हैं, थे। उन्होंने सम्पूर्ण आत्मविश्वास के साथ इस विषय पर कविताएं लिखी हैं। महजूर इस क्षेत्र में एक नवीनतम विचार धारा उत्पन्न करना चाहते थे। इस विषय में उनका दृष्टिकोण बहुवर्णभासी था। इस बात के परिणाम के प्रमाण के रूप में हमें उनकी कुछ गीतात्मक कविताएं मिलती हैं जो उन्होंने आरम्भ में लिखी थीं। कुछ भी हो, आरम्भ में लिखे गये प्रेम-गीतकाव्य और बाद में लिखे गये प्रेम-गीतकाव्य दोनों की ही शैली में बड़ा अन्तर है। बाद में लिखे गये गीत काव्यों की भाषा मधुर, मृदु और सरल है और बोल-चाल की भाषा के बहुत समान है। निस्संदेह यह भाषा के प्रति एक बहुत बड़ा योगदान है।

महजूर के कश्मीरी काव्य के प्रभाव का महत्व बड़ा व्यापक है। बहुत समय के बाद उन्होंने, इसे नया जीवन और स्वर संस्कार दिया है। उनका काव्य फिर एक बार विश्व के लोगों का काव्य बन गया है। यह काव्य लौकिकता और धर्मनिरपेक्षता की भावना से ओतप्रोत है। अन्य बातें जिनमें जीवन की व्याख्या और आलोचना होती है, यह काव्य, कवि के अमूल्य निजी अनुभवों का बोध कराता है। इसकी एक बड़ी विशेषता पाठकों को आनंद प्रदान करने की शक्ति है। कवि ने निस्संदेह ही परम्परागत रीतियों का उपयोग अपने काव्य में किया है, परन्तु आधुनिक कवियों के विपरीत, वह इस क्षेत्र में प्रयोग करना पसन्द नहीं करता है। फिर भी बहुत से पहलुओं में वह इन कविताओं को, विषय और शैली, दोनों ही में आधुनिक बना देते हैं। कलाकार के रूप में, नये ढंगों में प्रयोग करना उन्हें पसन्द नहीं था, और उन्होंने सदैव रूढ़िवादी ढंग से ही लिखने के लिये तत्परता दिखाई। सन् 1950 में, उन्होंने, मुक्त रूप से लिखने और अतुकांत लिखने के लिये तथा भाषा का अधिक स्वच्छन्दता से उपयोग करने के लिये, आधुनिक युवाकवियों की कड़ी आलोचना की।

अनुभव की गई अनुभूतियों का ब्यौरा

महजूर ने लिखने में साधारणतः तीन रूपों का उपयोग किया है: वचन, गज़ल और नज्म। वचन, कश्मीरी में कविता का एक अत्यन्त लोकप्रिय रूप है, जिसके प्रत्येक पद में चार पंक्तियां होती हैं, और चौथी पंक्ति सदैव स्थायी होती है। गेयता में यह गज़ल और गीत से बहुत अधिक मिलती जुलती है। कश्मीरी भाषा में गज़ल का आरम्भ, महमूद गनी नामक कवि ने किया था, और अन्य कवियों के साथ महजूर ने भी अन्तर्भूत भावों से युक्त गज़लें लिखी। यदि कोई व्यक्ति महजूर की सर्वोत्तम रचनाएं पढ़ना चाहता है तो उसे उनकी गज़लें और वचन पढ़ने चाहिएं, जिन्हें पढ़ने के पश्चात् यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि यह गज़लें और वचन महजूर के काव्य का सार है। इन वचनों और गज़लों में उन्होंने बड़ी सरलता से असाधारण परन्तु ज्ञात कल्पना को वह रूप दिया है, जिसका उन्होंने अनुभव किया था। यह साधारणतः उनके द्वारा अनुभव की गई अनुभूतियों का ही ब्यौरा है, जिसका उन्होंने बड़ी ईमानदारी के साथ पाठकों तक संचार किया है। काव्य के यह दो रूप, महजूर के पूर्ववर्तियों की अभिव्यक्ति के भी माध्यम थे। परन्तु जब महजूर ने इन्हें अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया, तो यह उन्हें अपूर्ण अनिश्चित और अबद्ध लगे। रसूल मीर, शम्स फकीर और बाहव के बाद के कुछ अन्य कवि लकीर के फकीर ही थे और उनका सृजनात्मक योगदान कुछ नहीं था। उस समय भाषा के श्रेष्ठ कवियों का अनुकरण विफलता से हो रहा था, जिसके परिणामस्वरूप गज़ल और वचन बेजान हो गए। ऐसी स्थिति में एक ऐसे कवि की आवश्यकता थी, जो इन गज़लों और वचनों को नया रूप दे सके।

कश्मीरी वचन और गज़ल

इस भूमिका की कसौटी पर जब हम महजूर के वचन और गज़लों को कसते हैं तो महजूर का महत्व हम से छिप नहीं सकता है। हम उस महत्व और परिवर्तन का अनुभव करने लगते हैं जो उन्होंने इस क्षेत्र में किये थे। महजूर की कलात्मक क्षमता और चित्र विचित्रता ने एक बार फिर कश्मीरी गज़लों और वचन को नया रूप प्रदान किया। बड़े ही नाजुक समय में महजूर ने इन गज़लों और वचन में परिवर्तन किया क्योंकि ये तत्कालीन क्रांतिकारी कवि थे

compiled and created by Bhartesh Mishra

और सुधारवादी अधिक । इसके अतिरिक्त फारसी और उर्दू गज़ल पर भी उनकी नजर थी, इसलिये उन्होंने परम्परा से अपना मुंह नहीं मोड़ा । यह वास्तव में सत्य है कि उन्होंने रसूल मीर नामक कवि का अनुकरण किया । महजूर ने, हाजन में, एक बहु-कृति कवि, वाहब की मृत्यु के पश्चात उसका अप्रकाशित "दीवान" इस शताब्दी के लगभग दूसरे दशक के आस-पास पढ़ा था । कुछ भी हो, यह रचनात्मक अवधि बहुत अल्पकालीन थी । इस काल के काव्य में हम, परिपक्व महजूर की मौलिकता और उनकी झलक देखते हैं । भाषा बहुत सरल और प्रमाणिक है । यह वह भाषा नहीं है जो गांव के ग्रामीणों द्वारा बोली जाती है अपितु यह शहर के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है । हमें फिर एक बार गजलों और वचनों के विषय के बारे में परिवर्तन देखने को मिलता है जो कम महत्वपूर्ण नहीं हैं । इनमें नियति, रहस्यमय प्रकृति की समस्याओं, सामाजिक अन्याय और प्रेम की स्वाभाविक विशेषताओं के विषय में बहुत कुछ सामग्री थी । इन सबको छोड़कर महजूर ने इनमें एक नई विचारधारा का आरम्भ किया । यह सब कुछ मिलाकर वही था, जो विशेषकर उसने प्रेम और जीवन के स्मरणीय क्षणों में अनुभव किया था । वास्तव में, सत्य तो यह है कि महजूर का सर्वोत्तम काव्य, उनकी गज़लें और वचन ही हैं ।

अपने प्रौढ़ वर्षों में उन्होंने जो कविताएं लिखीं, वह सब ही रचनात्मक नहीं थीं । इनमें से कुछ अब केवल ऐतिहासिक महत्व की ही रह गई है । ये वास्तव में समकालीन राजनीति और समस्याओं के ही नारों के पद हैं । इनमें "किसान का गीत", "सुरक्षा परिषद् के नाम", "युद्धगीत", "मजदूरों के नाम", "कुदाली" और "नया कश्मीर" शामिल है । परन्तु कुछ कविताएं और भी हैं जिनमें कवि को काव्य का संरक्षण करने में सफलता मिली है । "किसान कन्या", "सन् 1947 की आजादी", "गुलाला", "संगरमालान" पाठक पर अपनी सुन्दरता और प्रभाव की छाप के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी जाती हैं । इन कविताओं में महजूर की भाषा कलाकार की भाषा है । सन् 1947 की आजादी एक प्रभावशाली और कटु व्यंगकाव्य उन लोगों पर लिखा गया है जिन्होंने साम्प्रदायिक रक्तपात में भाग लिया था और नैतिक मूल्यों को आघात पहुंचाया था । "संगरमालान" में वह एक नये उदय, जो प्रेम, मेल-मिलाप और समृद्धि का एक अग्रदूत है, की कल्पना करता है । "संगरमालान" की लोकप्रियता उसके सौन्दर्य और कल्पना पर आधारित है, जो वास्तव में अनुपम है । "गुलाला" में राजनीतिज्ञों की गलतियों और स्वार्थ का व्यंगात्मक रूप से अनावरण हुआ है । उस समय प्रचलित बुराईयां, प्रश्न, के रूप में कन्दपुष्प (लाल) के सामने रखी गई हैं, और उससे इनके उत्तर के विषय में पूछा गया है कि ये बुराईयां क्या उस जगत में भी प्रचलित हैं जहां से वह उत्पन्न हुआ है । यह कविता व्यंग और कटाक्ष के लिये बहुत लोकप्रिय हो गई है । नज्म के इस क्षेत्र में, महजूर के बाद कोई उल्लेखनीय परम्परा नहीं थी, बल्कि उन्होंने नज्म को कश्मीरी साहित्य में इस प्रकार प्रचलित किया था ।

महजूर का काव्य, निस्संदेह इस बात को स्पष्ट करता है कि वह अपने युग के प्रतिनिधि थे । उसकी कुछ कविताएं राजनीतिक मोर्चे पर गाई जाती थीं, और इन सब कविताओं का संकलन उस काल के संघर्ष को प्रदर्शित करता है जिसमें उन्होंने अपना जीवन बिताया था । किसी भी कश्मीरी कवि को अपने जीवन में उतनी लोकप्रियता नहीं मिली, जितनी महजूर को प्राप्त हुई थी । उन्हें इस बात का विशेष ध्यान था कि उनकी कविताएं संगीतज्ञों द्वारा, कश्मीर घाटी के कोने कोने में गाई जायें । उनके लिये कवि की सफलता का आधार उसकी कविता की लोकप्रियता थी ।

कश्मीरी भाषा को लोकप्रिय बनाना

अंत में इस विषय में कुछ कहना उचित प्रतीत होता है कि महजूर ने कश्मीरी भाषा को उस समय लोकप्रिय बनाने में क्या भूमिका निभाई, जब बुद्धि-जीवियों की प्रिय भाषाएं उर्दू और अंग्रेजी ही थी तथा राज्य सरकार ने जब, भाषा के विकास की उन्नति के लिये आवश्यकता नहीं समझी थी । विभिन्न साहित्यिक सभाओं में कोई उन्होंने उस भाषा की उपयोगिता पर जोर दिया जो आम जनता द्वारा बोली जाती थी । उन्होंने सर्वप्रथम कश्मीरी साप्ताहिक "गाश" का भी प्रकाशन किया और साहित्यिक संगठन, सांस्कृतिक कांग्रेस, जिसकी स्थापना कश्मीर में सन् 1947 की आजादी के तुरंत बाद हुई, में सक्रिय भाग लिया । हम महजूर से उनके उन विचारों के सम्बन्ध में सहमत न हों जो काव्य के बारे में थे, परन्तु हम उनकी अधिकांश कविताओं को बड़े हर्ष से पढ़ते हैं जिनका सृजन उन्होंने समय-समय पर कश्मीरी भाषा में किया था ।

रूपांतर : ईश्वर चन्द्र आर्य

compiled and created by Bhartesh Mishra

कश्मीर में रहस्यवाद

गुलाम रसूल संजकी

रहस्यवादी अनुशासन प्रत्येक ईश्वरवादी विचार धारा की लगभग सभी आध्यात्मिक पद्धतियों की आधार शिला सिद्ध हुआ है। इसलाम के आगमन से बहुत पहले ध्यान तत्पर चिन्तन में कश्मीर ने एक विलक्षण अंशदान तो किया ही, पर उसे आध्यात्मिक उत्कर्ष में सामर्थ्य और प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिये बिका बहुलवाद और बौद्ध निष्पक्षपात (उदारता) में से गुजरना पड़ा। मुसलिम रहस्यवाद ने 14 वीं शताब्दी से लेकर आज तक इस प्रवृत्ति को नवीन पौरुष और उत्साह, संगत दिशा और प्रयोजनीयता के साथ आत्मसात किया है। इस का परिणाम यह हुआ है कि कश्मीरवासियों का सामूहिक आचरण लाल-देद से लेकर अब तक स्पष्ट सांचे में ढलता चला आ रहा है। यह एक ऐसी अद्वितीय घटना है जिसका एशिया के राष्ट्रों के इतिहास में कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता।

मुसलिम रहस्यवाद के इतिहासकारों ने पैगम्बर हजरत मुहम्मद (मालिक उन्हें शान्ति प्रदान करे)--के जीवन काल से ही इसका स्त्रोत ढूंढ़ निकाला है। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि आशाब-ए-सूफ़ा जो पैगम्बर मुहम्मद के साथियों का एक वर्ग था, इस्लाम द्वारा प्रवर्तित रहस्यवादी अनुशासन के सर्वप्रथम प्रशिक्षार्थी थे। कुछ और इतिहासकार आगे कहते हैं कि चार धर्म परायण खलीफों को विशुद्ध धर्म तन्त्र अर्थात् पवित्रता, यथार्थ में एक ऐसा मौलिक सिद्धान्त था जो कि सभी चौदह रहस्यवादी विचार धाराओं की धुरी रहा है। जब खिलाफत उमायद राज्य में परिवर्तित हो गयी तो इस राजनीतिक छल के परिणामस्वरूप अब्बासी सामन्तवाद के चारित्रिक भ्रष्टाचार ने "सत्य की खोज को तीव्रता प्रदान की। पवित्र धर्म परायण मुसलमानों के एक सम्प्रदाय ने जिसमें ताऊस येमानी, सालूक-ए-कारबी, इबन-ए-मुताबिब्ब और मलिक इबन दीनार थे, शासकों की लौकिकता और जनता के अज्ञान के विरुद्ध विद्रोह किया। इन पवित्र आत्माओं की मण्डली में से हसनाबसरी को रहस्यवाद की अन्तर्ज्ञान सम्बन्धी विचारधारा की ओर अग्रसर करने का श्रेय प्राप्त है। यद्यपि इमिलक के इबन-ए-हाशिम को ऐसा पहला रहस्यवादी कहा जाता है जो वास्तव में सूफी कह कर पुकारा गया है। कुछ समय के बाद इब्राहीम के तीव्र अनुराग, रबिया बसीरिया की ईश्वर भक्ति जुनैद और धन्नून के ज्ञान वाद, बहजाद और हल्लाज के आत्म विसर्जन के सिद्धान्त ने रहस्यवाद की प्रवृत्ति को अधिक सम्पन्न बनाया। इबनए-अरबी के सैद्धान्तिक संक्षेप [illegible] रूसी की मसनवी में लाक्षणिक व्याख्या और सिर्जा अकमल-उल-दीन, वहदत इकन (यह अन्तिम कृति कश्मीर में सम्पादित हुई) तक आ कर रहस्यवाद अपने शिखर पर जा पहुंचा।

वेदान्त और सूफी मत का संयोजन

जब इसलामी शासन के अन्तर्गत विविध देशों में रहस्यवादी ज्ञान पनप रहा था तब अरबेतर विचार-धाराएँ, यथा आर्यों का सर्वेश्वरवाद, बुद्धों का आत्म त्याग, ईसाईयों का वैराग्य, जरथुस्तियों का "प्रकाश और अन्धकार का द्वुतत्व", मुसलिम रहस्यवाद से संश्लिष्ट और विकसित होकर इतनी सूक्ष्म रीति से सूफी मत में रेंगती चली आ रही थी कि उसके अरब और अरबेतर तत्वों को अलग अलग करना नितान्त असम्भव था। उसी समय हजरत बलबल शाह और मीर सैयद अली हमादान इसलाम का प्रचार करने कश्मीर में आये। घटनाओं का यह एक विचित्र संयोग था कि लाल देद (जन्म-1335) ने ठीक उसी समय रहस्यवादी चिन्तन स्वदेशी परम्पराओं के आधार पर आरम्भ किया था जब रहस्यवादी मुसलिम प्रचारकों का प्रथम दल कश्मीर में पहुंचा था। अधिकतर इतिहासकारों के अनुसार --जिन में सब से उत्तरवर्ती है, पं० जे० एल० कौल और ए० के० रहबर,--लाला पर इसलाम का बहुत गहरा प्रभाव था, जिस का परिणाम यह हुआ कि वह उस संस्कृति और सामिल संयोजन का अग्रदूत सिद्ध हुआ जो कश्मीर में प्रचीन वेदान्त की मीरास था और इसलाम की नई सूफी परम्परा में घटित हुआ (जे० एल० कौल) और जिसे मुसलिम सतों के रेशी वर्ग ने प्रस्तुत किया। उसकी काश्मीरी भाषा में वख (अंकुरित शब्द वाक्य के) कविता रहस्यवादी दृष्टि कोण से ओत [illegible] ऐतिहासिक तथ्य है और न कुण्डलिनी

compiled and created by Bhartesh Mishra

और नाद-बिन्दु योग का अनुशासन है जिसके कारण उसकी कविता ने उसे जनता का संत कवि बना दिया। यह तो निष्ठा की सत्यता उसके अपने रहस्यवाद के अनुभव की गहराई की छाप है और उसके कवित्व की अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता है जो कि मुहावरों की ऊर्जस्विता, सहनशीलता, सहानुभूति और सार्वभौम भ्रातृत्व द्वारा व्यक्त की गई है। शेख और उसके अनुयायियों ने जो प्रेम भरा सन्देश दूर-दूर के गांवों में पहुंचाया उसने साधारण जन समूह पर जादू सा कर दिया।

"प्रेमी वह है जो प्यार की आग में जलता है।
जिस की आत्मा सोने के समान चमकती है।
जब मनुष्य का हृदय प्रेम की ज्वाला से चमक उठता है
तभी वह अनन्त तक पहुंच पाता है।"

इस आन्दोलन के साथ-साथ कुबर्वी और सुहरावर्दी सम्प्रदायों के रहस्यवाद ने जो सैयद हमादानी और शेख हमजा मखदूम कश्मीरी ने प्रस्तुत किया था, आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा और सांसारिक व्यवहार में पथ प्रदर्शित किया जिस से ऋषियों का एक बड़ा मतभेद था। पहले जिन सन्तों का वर्णन किया गया है उन्होंने सांसारिक आनन्दोपभोग को त्याग दिया और बाद के दोनों सम्प्रदायों ने मानव आचरण के मार्ग का समन्वय इस प्रकार किया कि जो शैतान की पहुंच से बाहर था। यहां हम शाहे हमादान के शब्दों में अपने हृदयोद्गार प्रकट कर सकते हैं, "हे प्रभो, गूढ़ ज्ञान बाद के रहते हुए भी हम ने आप को नहीं पहचाना, क्योंकि, यद्यपि हम रहस्यमय ज्योति से प्रकाशित हैं तो भी वह असीम, सीमित मानव की पकड़ में नहीं आ सकता।" नक़्शबन्दी और क़ादरी सम्प्रदाय भी क्रमशः ख्वाजा खावन्द महमूद और पीर नाजुक क़ादरी ने प्रस्तुत किये जिन्होंने कश्मीर की रहस्यवादी संस्कृति में अपना हिस्सा डाला। इन सम्प्रदायों के सन्तों और विद्वानों ने आत्मिक प्रवृत्तियों को ही नहीं बल्कि "सुख और दुख के समय में" जीवन को ही नये ढंग में ढाल कर रख दिया, जिसे संक्षेप सी रूप रेखा में प्रस्तुत करना भी एक विस्तृत विवरण की अपेक्षा रखता है। कश्मीर के रहस्यवादियों के निरन्तर प्रयत्नों के होते रहने पर भी दुर्भाग्यवश ब्राह्मण जाति की उत्कृष्टता का दम्भ कुछ एक सम्प्रदायों में समाप्त नहीं हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि समय की धारा के साथ-साथ इस का उन्मूलन करने के लिये सन्तों के सब पूजा गृह परान्न भोजी मतवल्लियों, बाबाओं और ऐसे पीरों के अड्डे बन गये जो यात्रियों को सताते थे और उन की आँखों में धूल झोंकते थे। यही कारण है कि किसी विदेशी को रहस्यवादी क्षेत्र में अपनी मीरास का यकीन दिलाना तब तक असंभव प्रतीत होता है जब तक कि उसे हमारे संस्कृत, फारसी और कश्मीरी भाषाओं में रचित रहस्यवादी साहित्य के अध्ययन का पर्याप्त अवसर न मिले। धार्मिक सहिष्णुता, उदार विचार धारा, कुत्सित राजनीति की ओर से उदासीनता और भ्रातृभावना आदि सब सद्गुणों को हमारे रहस्यवादियों ने जन्म दिया जो कश्मीरी भाषा के सन्त कवियों द्वारा निरन्तर प्रगति की ओर ले जाई गयी। अन्तर केवल इतना है कि सितीकान्त, साहाब कौल और परमानन्द आदि हिन्दू रहस्यवादियों ने अपने प्रतीक और संकेत हिन्दू धर्म ग्रंथों से लिये और मोमिन साहिब, हबकानी आसाद पारे आदि मुसलमान रहस्यवादियों ने अपनी वर्णन शैली का आधार फारस की रहस्यवादी दृष्टि की परिभाषा को बनाया। यहां योग की परिभाषा को उद्धृत करना विषयान्तर नहीं होगा, कहा है :—

"योगाभ्यास के लिये किसी व्यक्ति को भी
घर बार त्याग देने की आवश्यकता नहीं है।
आवश्यकता है बुराई का मार्ग त्याग देने
की और ईश्वर की याद रखते हुए अपने
कर्तव्यों को ठीक तरह से निभाने की।
इस प्रकार पवित्रता, आत्मा की जागरूकता
ईश्वर प्रणिधान, ये योग की तीन अनिवार्य
आवश्यकताएं हैं।"

सूफ़ीमत : एक सार्वभौम धर्म

यही वह है जिसका प्रचार अहमद बटवारी, सोछ काल और शमस फ़कीर जैसे सूफी कवियों ने किया है। वे हमें बताते आ रहें है कि सूफ़ी मत एक सार्वभौम धर्म है क्योंकि यह कर्म कांड में विश्वास नहीं रखता।

कश्मीर के लोग इन गुरुओं के दिखाये हुए मार्ग पर चलते आ रहें हैं। यही कारण है कि इस भौतिकवादी युग में भी कश्मीर में हमारे पूजा गृह एक हैं, नाम एक जैसे हैं और हमारी मीरास एक हैं। ईद आदि के उत्सव पर गाई जाने वाली लोक गाथाओं में से एक इस प्रकार हैं :—

"आदम के दो बेटे थे
एक को जला दिया गया
और दूसरा दबा दिया गया"।

तथापि कवियों की एक लम्बी शृंखला, जिसने इन दो सिद्धान्तों को मैत्री पूर्ण ढंग से संश्लिष्ट किया है और स्वदेशी रहस्यवाद का एक नया सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है— ख्वाजा हबीबुल्ला नोशेरी, शाह कलन्दर, रहीम साहिब और रुप बादनी और अन्त में रहस्यवादी कवियों के शाहज़ा दे शमस फ़कीर (1843-1904) जिन्होंने इस मशाल को प्रज्वलित रखा जिसका परिणाम यह हुआ कि इस भौतिकवादी युग में भी मास्टर जिन्दा कौल, आज़ाद जर्गर और समद पीर ने, जिनकी रहस्यवादी वार्ताएं और विचार निर्माणात्मक सिद्ध हुए और इस विषय के आलोचकों से प्रशंसा प्राप्त की।

प्लाटिनस ने जो सदियों पहले कहा था उस का हवाला यहां देना अप्रासंगिक न होगा। "जब हम उस असीम की साक्षात उपस्थिति में खड़े होते हैं जो कि आत्मा की गहराई से प्रकाशमान होता है तो उस वास्तविक और विशेष की ऊंचाइयों तक ले जाने वाले महान् उच्च मार्ग खुल जाते हैं"। कश्मीरी अपने इतिहास के कष्टपूर्ण दिनों में भी आंतरिक प्रकाश की परीक्षा में पूरे उतरे हैं। इस का एकमात्र कारण यह है कि हमारे रहस्यवादियों ने लोगों का उचित पथ प्रदर्शन किया है।

"हृदय में प्रेम की प्रकाशमय ज्योति
ईश्वर है। क्योंकि जब मनुष्य
बनाया गया और ईश्वर ने अपना
घर प्रेम को चुना, जब मानव के
संतप्त हृदय में शोक की मात्रा
अधिक थी तो उसे प्रेम का सहारा मिला।"

(जिन्दा कौल)

रूपांतर : ओम प्रकाश तलवाड़

compiled and created by Bhartesh Mishra

पहाड़ी लघु

पहाड़ी शब्द से शिवालिक पहाड़ियों का समीपवर्ती क्षेत्र पूंछ, जम्मू, बसोहली, नूरपुर, कांगड़ा, हरिपुर, गुलेर और मध्य हिमालय क्षेत्र जैसे रामनगर, भदरवा, चम्बा, कुल्लू, टेहरी-गढ़वाल आदि विस्तृत क्षेत्र का बोध होता है। पहाड़ी प्रदेश के लोगों की भाषा पहाड़ी और इसके विभिन्न रूप हैं। अभिलेखों से यह पता चलता है कि पहाड़ी प्रदेश में लगभग 38 राज्य थे जिनमें बसोहली, जम्मू, नूरपुर, कांगड़ा, चम्बा प्रमुख थे। 19वीं शताब्दी के अंत तक इन राज्यों में विकसित चित्रकारी की कला को पहाड़ी चित्रकला या पहाड़ी लघु-चित्रकला के नाम से जाना जाता था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान किया गया जिसके परिणाम स्वरूप सैकड़ों हजारों चित्र प्रकाश में आए हैं, और विश्वकला के इतिहास में उनका स्थान निर्धारित किया जा सका है। इन राज्यों में स्थानीय शासकों के संरक्षण में चित्रकारी की विभिन्न शैलियों का जन्म हुआ। स्थानीय इतिहास के अध्ययन से उन परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है जिन्होंने इस विश्व प्रसिद्ध कला को जन्म दिया। इन कृतियों के अध्ययन से उन पहाड़ी लोगों के चरित्र और विश्वासों के बारे में भी पता चलता है जिन्होंने मैदानी भागों से आए हुए कलाकारों को आश्रय और स्नेह प्रदान किया है।

स्थानीय रूप से शैली शब्द को कलम के नाम से जाना जाता है। इसलिए प्रत्येक शैली या स्कूल के लिए जहां भी विभिन्न केन्द्रों का उद्भव हुआ है, 'कलम' शब्द का प्रयोग करना उचित होगा।

बसोहली कलम : प्राचीनतम लघु चित्रकला

बसोहली कलम पहाड़ी चित्रकला में अभी तक ज्ञात चित्रकलाओं में सबसे पुरानी चित्रकला है। बसोहली जम्मू और कश्मीर राज्य के जम्मू प्रान्त का तहसील मुख्यालय है। यह रावी नदी के किनारे स्थित है और जम्मू से सड़क मार्ग द्वारा एक सौ बत्तीस किलोमीटर दूर है।

बसोहली कलम का जन्म केवल बसोहली में ही हुआ और हमें सबसे पुरानी चित्रकला कृपाल पाल की चित्रशाला में मिलती है। भानुदत्त की रसमंजरी को दर्शाने वाले चित्र और चित्रकारी, जिन्हें

compiled and created by Bhartesh Mishra

चित्रकला

वी० आर० खजरिया

चित्र रसमंजरी कहा जाता है, अब डोगरा कला वीथि के संग्रहों में हैं, (ये चित्र जिनकी संख्या 67 है 1956 में बसोहली के स्वर्गीय पदकुंजलाल के संग्रह से एकत्रित किए गए थे) लाहौर, संग्रहालय, श्रीनगर संग्रहालय, बोस्टन म्यूजियम और अन्य निजी संग्रहों में है, इस सेट के लघुचित्रों में से एक में चित्रकार का नाम भी है और इस खोज का श्रेय हीरानंद शास्त्री को है जिन्होंने इसका उद्घाटन 1928 में अखिल भारतीय ओरिइंटल कान्फ्रेन्स, लाहौर में किया इसमें अंकित समर्पण से उस तिथि का पता चलता है। 1964 ई० में कलाकार देवीदास द्वारा जब यह बसोहली के राजा कुमालपाल को भेंट की गई थी। ये आयताकार कागज पर ऐसे चित्र हैं जिनमें सब से पुरानी तारीख अंकित है। इनके चित्रों में विचित्र चेहरे युक्त पुरुष और स्त्रियों की आकृतियां बनी हैं। इनके किनारे लाल और पीले हैं और उन पर कलात्मक वृक्ष बनाए हैं उभरे हुए पत्ते पर प्रभाव को बढ़ाने के लिए रंगे हुए आभूषण तथा मोरों के चमकते हुए पंख हैं।

पेविलियन की नीव से बहुत बड़े आकार के भीषण मुखाकृति दिखाना और उत्तम प्रभाव को उत्पन्न करने वाले शुद्ध रंगों का प्रयोग करना इन चित्रों की प्रमुख विशेषताएं हैं। इन प्रारंभिक लघुचित्रों में चित्रपृष्ठ पर वस्तु कला का अधिक प्रभाव है। क्षितिज रेखा बहुत ऊंची है और शैल के आकृति के बादलों को आकाश के शवीर्ण दायरे में ऊर्ध्वाधर रंगा गया है। प्रत्येक वस्तु या तत्व को एक में जोड़ते हुए सम्पूर्ण संयोजन पृष्ठ के इर्द-गिर्द झुकता है। वृक्षों का बाग अर्द्धवृत्ताकार झुकाव में व्यवस्थित किया गया है। जिसके समग्र सजावट को पर्याप्त गति मिलती है।

बसोहली : दूसरी प्रावस्था

इस कलम की दूसरी प्रावस्था अर्थात् राजा मेघनीपाल के काल में गीतगोविन्द की चित्रकला मिलती है जिसमें वस्तु कला नहीं मिलती है। मुखाकृति के फार्मूले में भी थोड़ा परिवर्तन दिखाई देता है और सम्पूर्ण नाटक एक खुले हुए मंच पर दिखाया गया है जिसमें विषाद और छाया का कोई स्थान नहीं है। इस प्रारंभिक प्रावस्था का

compiled and created by Bhartesh Mishra

जटिल डिजाइन अब नहीं दिखाई देता। इनमें सादगी के प्रति मोह झलकता है और रंग सुरुचि पूर्ण एवं प्रभावशाली है। स्त्री तथा पुरुष आकृतियां सरल हैं और अधिक सजावट तत्वों से मुक्त रखे गए हैं। प्रारंभिक आकृतियों की अभिव्यक्ति जो कामुक, उदण्ड शक्तिशाली, प्रभावशाली और अतिशयता पूर्ण है, अब नहीं होते हैं। इसके बदले अधिक गोल, शांत और साधारण किस्म मिलता है। वस्त्र हल्के और पारदर्शी हैं। चित्र के पृष्ठभाग में खुले भूभाग पर हवा के स्थान के लिए कई स्थल हैं। आकृति के अनुसार मुखचित्र के पृष्ठवृत्त या अर्धवृताकार वृक्षों द्वारा अत्यन्त शैलीबद्ध रूप में हैं, पशु, वृक्ष मानवपूर्ण और अन्य वस्तुएं इन लघु चित्रों की विशिष्ट विशेषताएं हैं, सुन्दरता की दृष्टि से बसोहली कलम की दोनों प्रावस्थाएं सृजनात्मक कार्यकलापों, नए विचारों से सहयोग और निरूपण का काल रहा है। इन दोनों प्रावस्थाओं के बाद यह कलम अपनी शुद्धता को न रख सकी और मुगल तथा कांगड़ा कलमों से प्रभावित हुई। ये कलाकार पहाड़ी चित्रकारी के केन्द्रों में गुलाब सिंह द्वारा 1846 ई० में इसे अपने राज्य में मिलाने के समय तक सक्रिय रहे।

जम्मू कलम

राजा कृपालपाल और उसके चित्रकार देवीदास पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकारी आरम्भ की, जिसमें स्थानीय प्रतिभा को महान कृतित्व के स्तर तक लाया गया। जम्मू में बलवन्त देव या सिंह और उसका चित्रकार नैनसुख जसरोतिया प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने जम्मू कलम की स्थापना की। जिसमें स्थानीय प्रतिभा कहीं भी नहीं दिखाई देती। इस कलम की लघु चित्रकला से स्पष्ट होता है कि लगभग 1748 तक कोई जम्मू स्कूल न था। 1739 ई० में नादिरशाह के आक्रमण से मैदानी भागों के व्यापारी तथा कलाकार शांतिपूर्ण क्षेत्र पहाड़ी राज्यों में शरण लेने के लिए विवश हुए। इस समय जम्मू में विद्वान और दूरदर्शी राजा रणजीत देव (1735 से 1781 ई०) का शासन था। जिन्होंने मैदानी भागों से आने वाले कई लोगों को शरण दी। इस प्रकार जम्मू व्यापारियों का केन्द्र और शांतिप्रिय कलाकारों का निवासस्थान बना। राजा रणजीत देव के सबसे छोटे भाई बलवन्त देव ही केवल ऐसा व्यक्ति था, जिसे जम्मू कलम के जन्म देने का श्रेय हो। जम्मू के सरुइनसर क्षेत्र में चालीस हजार रुपए की उसकी जागीर थी। इस संरक्षण के दिनांकित और अदिनांकित लघुचित्र इस कलम के प्राचीनतम अवशेष हैं और नैनसुख जसोरिया इनके दरबार के प्रमुख व्यक्ति थे, जहां तक कि इन लघु चित्रों का संबंध है। दो अन्य चित्रकार बजनशाह और दिदिगी सुपरिचित हैं, जिन्होंने बलवन्त देव की सेवा में कार्य किया। नैनसुख पंडित शिव के पुत्र थे, जो मैदानी भाग से आए थे और जसरोरिया राज्य में बस गए। अब यह जम्मू से लगभग 80 कि० मी० की दूरी पर जंगल में एक खंडर है। बलवन्त देव के सबसे पुराने चित्र 1748 के हैं यह भी हो सकता है कि उसने इस अवधि के दौरान मैदानी भागों से शरणार्थी कलाकारों के आने के बाद ही शिल्पशाला बनाई है इनमें से अधिकांश चित्रकार स्पष्टतः छवि चित्रकार थे। राजा बलवन्त देव और उसके पास रहने वाले व्यक्ति जैसे संगीतज्ञ गायक नृतक दरबारी; परिचर और यहां तक कि पशु तथा पक्षी भी उच्च कोटि के थे, जिनमें तत्कालीन मुगल चित्रकला का परिष्कार और सूक्ष्मता दिखाई देती है। इन लघु चित्रों में बलवन्त देव प्रायः अपने जीवन के सभी कार्यकलापों में दिखाया गया है। उसे हुक्का पीते हुए दिखाया गया है। दरबार में बैठे हुए लघु चित्र को देखते हुए, घोड़े का निरीक्षण करते हुए, बत्तखों का शिकार करते हुए, भवन के निर्माण कार्य का निरीक्षण करते हुए पत्र लिखते हुए, और अपनी दाढ़ी को संवारते हुए दिखाया गया है।

जम्मू : पतन

इस अवधि की जम्मू कलम स्पष्ट रूप से स्थानीय वातावरण मिश्रित मुगल प्रशाखाएं हैं। परन्तु बलवन्तदेव का कोई भी उत्तराधिकारी उसके कार्य को चालू न रख सका और उसे विकसित न कर सका, जैसा कि कांगडा में हुआ, परिणामस्वरूप इसका पतन आरम्भ हुआ, राजाबृजराज (1781—1787) के छवि चित्र और दरबार चित्र इस तथ्य के प्रमाण हैं। बृजराजदेव के देहान्त के बाद जम्मू के सिख प्रभाव का प्रसार हुआ। जम्मू की ये अशांत परिस्थितियां किसी भी सृजनात्मक कार्य के अनुकूल नहीं थीं। इसलिए कलाकार जम्मू छोड़ने के लिए विवश हुए। 40 वर्ष के अंतराल के बाद महाराजा गुलाब सिंह ने अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। जिससे पुनः कलाकारों को संरक्षण मिल सका। उसके पुत्र रणवीरसिंह ने एक शिल्पशाला की स्थापना की। जम्मू में लगभग 1830 से 1910 तक बहुत बड़ी संख्या में चित्र बनाए गए जिनमें से लगभग 500 चित्रों का संग्रह डोगरा कला, वीथी जम्मू म देखा जा सकता है। नन्दलाल रुलदू, हरिचन्द चन्नू और जगतराम, छुनिया जैसे कलाविद् इस अंतिम प्रावस्था के चित्रकार थे। इन कलाविदों के कार्य से हम सुपरिचित हैं और डोगरा कला वीथी जम्मू के संग्रह में देखा जा सकता है, जो कलम गुलाबसिंह और रणवीरसिंह के जीवनकाल के दौरान स्थापित हुई थीं वह पूर्ववर्ती कलम के समान उत्कृष्टता प्राप्त न कर सकीं परन्तु इससे नए किस्म के मिश्रण का उद्भव हुआ। यह एक सामान्य शैली थी, जिसमें राधा और कृष्ण के समान दो साधारण आकृतियां थीं जो वातायन के निचले भाग में स्थित समतल पृष्ठ और ऊर्ध्वाधर में मेहरावदार छज्जे पर बैठे हुए हैं। सिर और शरीर के अन्य अंगों को बनाने का फार्मूला पूर्णतः बदला हुआ है, सिर बड़े आकार के काल्पनिक आकृति के समान दिखाई देते हैं और शरीर के ऊपरी भाग को महत्व दिया गया है। रुलदू के चित्रों में राधा और कृष्ण अत्यन्त साधारण व्यक्ति हैं। रुलदू का शिष्य हरिचन्द प्रमुखतः अनुकृतियों देवी और देवताओं का चित्रकार था। उसके कुछ चित्रों में तीन आयाम, प्रकाश और छाया है जिसमें फोटोग्राफी प्रभाव लाने का प्रयास किया गया है। जगतराम ने अपने गुरु हरिचन्द का अनुकरण किया और इस कलम को अधिक गंभीरता प्रदान की। उस पर फोटोग्राफी और प्रचलित रंगीन मुद्रण का प्रभाव था। संसारचन्द जो जम्मू का जीवित कलाकार है, जगतराम का शिष्य है परन्तु उसने अपने गुरु की शैली का अनुकरण नहीं किया। उसकी अधिकांश कविता पाश्चात्य शैक्षिक स्वरूप की है।

अन्य कलम

कांगड़ा कलम का विकास कांगड़ा की पहाड़ियों में और संसारचन्द ने कलाकारों के एक शिल्पशाला की स्थापना की। संसारचन्द में अपने दुःखद पतन और अपने राज्य के हरण तक अविवादास्पद सम्राट के रूप में शासन किया। इन वर्षों में कांगड़ा कलम का विकास चित्रकला की उच्च कोटि की परिष्कृत लघुचित्र

compiled and created by Bhartesh Mishra

कला शैली के रूप में हुआ। इस अवधि के चित्र सुन्दर रंगों से युक्त प्रभावोत्पादक हैं जो अन्य किसी पहाड़ी कलम में नहीं मिलता।

इसी प्रकार पहाड़ी चित्रकला की अन्य कलमें भी थीं जिनका विकास भी साथ साथ हुआ परन्तु ये निकृष्ट कोटि की थीं। चम्बा कलम पर पहले बसोहली का प्रभाव पड़ा फिर कांगड़ा कलम का प्रभाव हुआ। कुल्लू की अपनी स्थानीय कलम जिस पर बाद में कांगड़ा कलम का प्रभाव पड़ा। गुलेर भी कांगड़ा कलम के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकी। रावी के पश्चिम में पुंछ, रियासी, रामनगर और रामकोट (मनकोट) जम्मू कलम की ही किस्में थीं।

पहाड़ी प्रदेश की भाषाएं और बोलियां आपस में काफी मिलती जुलती हैं इससे कलाकारों को, जहां भी वे अपने को असुरक्षित समझते थे, वहां से दूसरे राज्य में जाने में आसानी होती थी। इस भाषाई निकटता के कारण उन्हें अन्यत्र भी अभिमता का भाव मिलता था।

परम्परा और विशिष्टता

यदि उपलब्ध चित्रकला की पृष्ठभूमि में पहाड़ी चित्रकला पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि पहाड़ी कलाकारों में विशिष्टता पाई जाती है। वे कभी भी उस परम्परा से पृथक् नहीं हुए जिस परम्परा में पैदा हुए इसीलिए अधिकांश पहाड़ी चित्रकला उन सामान्य नियमों के ढांचे के अंदर ही रही जो उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त हुई थी। यही परम्परा इस बात की उत्तरदायी रही है जिससे यह कलमें स्थानीय विविधता के अतिरिक्त कुछ न ला सकी। इस प्रकार पहाड़ी चित्रकला भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना है। मुगलराज्य का पतन कलाकारों को उनके रचनात्मक कार्यों के लिए उपयुक्त मानसिक शांति न दे सका। केवल उन पहाड़ों की सुन्दर भूमि और उन्मुक्त आकाश ही मानसिक शांति दे सका जहां आकर वे बसे और नए वातावरण ने उन्हें रचनात्मक और कलात्मक कार्यों के लिए समृद्ध कल्पना प्रदान की। इस स्वप्न जगत में ज्ञात और अज्ञात कलाविदों को वह दृष्टि मिली। जिसे वे पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपते गए। बसोहली कलाकारों ने मोहक सुन्दर रंग और कामुक नारी सुलभ लावण्य द्वारा आत्मा के अध्यात्मिक संघर्ष का उद्घाटन किया। उसकी नारी ऐसे जगत की प्राणी है जहां प्रत्येक वस्तु से प्रोमोद्गार प्राप्त होता है। उसके तेज रंग आत्मा में अनन्त उष्णता की अभिव्यक्ति करते है जो प्रेम और कामुकता में तल्लीन है। उसकी सभी चित्रकारों की वस्तुएं समय और सीमा के बंधन में नहीं हैं। कृतियों का स्वरूप कालातीत है।

दूसरी ओर कांगड़ा कलम में अनन्त रंग और सूक्ष्मता है जहां शांत और शीतल कामुकता, प्रकाश और छाया में निवास करती है। प्राणी प्रेम और इच्छापूर्ति में तल्लीन है। उनकी श्रद्धा की वस्तु सदैव सुन्दर पहाड़ी भूमि पर स्थित उनकी प्रिया होती है। उनके प्रेमी और प्रेमिकाएं सदैव समीपवर्ती भूमि के पृष्ठ के सामने होते हैं जहां नवकुसुमित कलियों की बहुलता है। पहाड़ी चित्रकला 17 शताब्दी और 20 शताब्दी के प्रारम्भ के बीच पहाड़ी लोगों के सामाजिक रीतिरिवाजों, माध्यमिक भावनाओं, सौन्दर्य लालसा, शारीरिक वासनाओं का अभिलेख है।

रूपान्तर : भगत सिंह

compiled and created by Bhartesh Mishra

कुमाउंनी

भगवान राम की लीलाओं का अभिनय रामलीला के रूप में करना देश के कोने-कोने में प्रचलित है। विदेशों में भी रामलीला की प्रथा है। दिल्ली में भी रामलीला की पुरानी परंपरा है और रामलीला ग्राउंड में होने वाली रामलीला दिल्ली की प्रसिद्ध रामलीला है। इधर कुछ रामलीलाओं के कलात्मक अभिनय भी दिल्ली की कुछ कला संस्थाओं ने करने आरम्भ कर दिये हैं। भारतीय कला केन्द्र द्वारा अभिनीत रामलीला देश भर में प्रसिद्ध है। इस सब के बावजूद दिल्ली के रामलीला प्रेमियों का अधिकांश वास्तव में अपनी अभिनय देखने की इच्छा की तुष्टि करता है। दिल्ली के कोने-कोने में अभिनीत रामलीला की अधिकृत शैलियों हैं जिनमें से एक शैली है—कुमाऊंनी रामलीला।

दिल्ली में पचासों कुमाऊंनी रामलीलाएं दशहरों में खेली जाती हैं यहां तक कि रामलीला ग्रांऊड की विशाल जानी-मानी लीला के पड़ौस में ही सालों से सफलता पूर्वक कुमाऊंनी रामलीला खेली जा रही है। उसी प्रकार फिरोजशाह कोटला में सुप्रसिद्ध भारतीय कला केन्द्र की रामलीला होती है उसके बगल में ही एक दूसरी कुमाऊंनी रामलीला खेली जाती है। इन कुमाऊंनी रामलीलाओं में भी इतनी ही भीड़ भाड़ होती है कि जितनी अन्य मान्यता प्राप्त रामलीलाओं में। इससे इस बात का पता लगता है कि कुमाऊंनी रामलीला ने दिल्ली के कौने-कौने में अपना स्थान बना लिया है। लोधी कालोनी, विनय नगर आदि में कुमाऊंनी लगभग 20 साल से रामलीला सफलता पूर्वक करते आ रहे हैं। प्रत्येक वर्ष 2-4 नई कुमाऊंनी राम लीलाएं अपना अभिनय प्रारम्भ करती हैं। लगभग 2 वर्षों में कुमाऊं लोक कल्याण परिषद्, दिल्ली द्वारा अभिनीत लीला डिफेंस कालोनी में अपनी जड़ें जमा चुकी है। अतएव अपने जन्म स्थान कुमाऊं से दो सौ ढ़ाई सौ मील दूर इस महानगरी दिल्ली में कुमाऊंनी रामलीलाओं ने अपना निश्चित स्थान ही नहीं बना लिया है वरन अपना विस्तार भी कर लिया है।

इससे कदाचित लोगों में यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि कुमाऊंनी पद्धति में अभिनीत रामलीलाओं की कोई संगठित और समन्वित संस्था अवश्य होगी किन्तु ऐसा नहीं। अलग-अलग लीलाएं अलग-अलग स्थानों के कुमाऊनियों द्वारा आयोजित होती है और इन विभिन्न रामलीला कमेटियों के बीच में कोई विचार-विनिमय नहीं है। इसके अतिरिक्त दिल्ली के कला के माने हुए पारखियों ने इस पद्धति को कोई मान्यता नहीं दी है। इस शैली के सफलता के केवल दो ही कारण हैं पहला दिल्ली के कुमाऊंनियों में रामलीला करने और देखने के लिये अपार उत्साह तथा दूसरा राम चरित्र के संगीतमय अभिनय करने की इस शैली की कुछ विशिष्ट विचित्रता जो इसे अन्य शैलियों से अलग करती हैं।

कुमाऊं में रामलीला की परंपरा लगभग 100 साल पुरानी है। 20वीं शातब्दी के प्रथम चतुर्थांश में इस शैली के आधुनिक रूप का विकास हो चुका था। कुमाऊं में दो प्रमुख शैलियां विकसित हुई। पहली अल्मोड़े की तथा दूसरी भीमताल की। अल्मोड़े की रामलीला को श्री गोविन्द लाल शाह जी ने संवारा। इनका लिखा नाटक लगभग 50 वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका था। अल्मोड़े की लीला के ये मैनेजर होते थे और साथ ही परशुराम, अंगद का अद्भुत अभिनय करते थे। भीमताल की पद्धति भी प्रसिद्ध थी और भीमताल की लीला को देखने के लिये उत्तर प्रदेश के मैदानों से भी रईस लोग आते थे। इन दोनों पद्धतिओं में अन्तर थोड़ा ही था। और समानता अधिक थी जिससे यह सिद्ध होता है कि इन दो शैलियों के विकास से पहले ही कुमाऊंनी रामलीला का प्रेरणा प्रांत जन्म ले चुका था।

कुमाऊं की रामलीला क्या है? वह इस प्रकार समझायी जा सकती है : तुलसी की अवधी भाषा के दोहा, चौपाइयों को ब्रज भाषा की कविताओं के साथ साथ एक ही माला में पिरो कर एक गीतिनाट्य (ओपरा) का निर्माण करना जिसकी अपनी संगीतिक विशेषताएं हैं। ये संगीतिक विशेषताएं जिनके कारण कुमाऊंनी रामलीला का एक अपना प्रथक सुस्पष्ट रूप उभर आया है जो हैं चौपाइयों का विलंबित गायन तथा ब्रज भाषा की कविताओं का चाचर शैली में गाना। तुलसी की चौपाइयों का यह अति विलंबित गायन अवधी तथा भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में वर्तमान गायन से भिन्न है। होली के चंचल अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त चाचर ठेके के परिसर का विस्तार एक अद्भुत घटना है जो कि हिन्दुस्तानी संगीत को कुमाऊं की देन है। चाचर ताल को विहाग, जैजैवन्ती आदि गंभीर रागों में प्रयोग करके करुण रस की सफल अभिव्यंजना आदि देखनी हो तो

compiled and created by Bhartesh Mishra

रा म ली ला

दयानन्द पंत

कुमाऊं की रामलीला में दशरथ-कैकई संवाद देखिए । कल राम राज्याभिषेक है अवध में खुशियां मनायी जा रही हैं। रानी कैकई कोप भवन में है राजा दशरथ उन्हें मना रहे हैं और उनके कोप का कारण पूछ रहे हैं। रानी विहाग में चाचर ठेके में अनुबद्ध यह गीत 'प्रिये तुम काहे होत मलीन' कितना मार्मिक है यह तो सुन कर ही जाना जा सकता है। इस पर कैकई का उत्तर इसी ताल में जैजैवन्ती राग में है' देहु,— पिया मोहे दो वरदाना,' इन दो गानों में कुशल गायक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

कुमाऊं में यह रामलीला खुले मैदान में अभिनीत खुला नाट्य (ओपन एयर ओपरा) है। पहाड़ों की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वहां के लिये यह उपयुक्त है। ऊपर के सीढीदार खेतों में विशाल जन-समूह बैठ कर लीला का आनंद ले सकता है। नीचे का बड़ा मैदान ओपन एअर स्टेज का काम करता है, और जिसके हर कोने-कोने से कलाकार अभिनय करते हैं। प्रोमटर मोटी किताब लिये इधर उधर भागता रहता है। जनता के समक्ष प्रोमटिंग करने को बुरा नहीं समझा जाता। इस प्रकार अभिनय को एक विभिन्न विस्तार मिलता है। आमने सामने तीर चलते हैं। कागज और फूस की बनी हुई लंका वास्तव में जलती रहती है। दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि वह पुरानी घटनाओं को आंखों के सामने एक बार फिर देखता है। दिल्ली में दिल्ली की कुमाऊंनी लीलाओं ने स्थान और काल के अनुरूप इस पद्धति में कई परिवर्तन कर दिए हैं। खुले मैदान में अभिनय दिल्ली के छोट-छोटे प्रांगणों में संभव नहीं है। दुर्भाग्य से कुछ दिल्ली के आयोजक इस शैली के गीतनाट्य रूप को भी काट छांट रहे हैं। दिल्ली की जनता को अवधी की चौपाई समझ में नहीं आती है अतएव उसके स्थान पर गद्यांशों को लेकर लोक प्रियता बढ़ाने का प्रयत्न मुझ जैसे परंपरा भक्तों के लिये दुखद है। मैं तो अभी भी कुछ उत्साही जनों से अनुरोध करूंगा कि कम से कम एक बार दिल्ली में भी खुले मैदान में कुमाऊंनी रामलीला की पद्धति को फिर से आजमायें।

कुमाऊं जन जीवन का रामलीला एक अभिन्न अंग बन चुकी है। इतना अभिन्न अंग कि ब्रज भाषा में भी इस रामलीला में प्रयुक्त कविताओं, शब्दों आदि का मुहावरों में प्रयोग हो रहा है। "अट्टहास या 'ठहाका" इसके लिये कुमाऊंनी भाषा में भी अवश्य कोई न कोई पर्याय रहा होगा जो अब विलुप्त हो गया है। आज के दिन 'अट्टहास' शब्द का कुमाऊंनी में केवल एक ही पर्याय, है वह है "रावण की हंसी"। अतएव कुमाऊं की यह परंपरा अजर और अमर है और बिना किसी भी बाहरी सहायता के फूलती फलती रहेगी। संतोष की बात तो यह है कि दिल्ली में भी इस पद्धति ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। केवल एक ही खतरा है वह यह कि इसके मौलिक रूप को दिन पर दिन विकृत किया जा रहा है इस उद्देश्य से कि यह सामान्य जनता के लिए बौधगम्य हो। रूप को विकृत कर बौधगम्यता को बढ़ाना क्या उचित बात है? अच्छा तो यह होता कि इसके मौलिक रूप को बनाये रख कर अन्य सुधार किए जाते— जैसे वाद्यवृन्द का विस्तार टेप किए हुए संगीत के सहारे प्लेबैक संगीत देना और अन्ततोगत्वा इस पद्धति में नाटक का एक मान्य संस्करण दिल्ली से प्रकाशित करना।

इन सब बातों के लिये यह आवश्यक है कि इधर उधर फैली हुई दिल्ली की अनेक कुमाऊंनी रामलीला कमेटियां मिल कर एक केन्द्रीय समन्वय समिति बनायें जो कि इस परंपरागत कला के बौद्धिक पक्षों का संरक्षण कर इधर-उधर फैली हुई विभिन्न समितियों का पथ प्रदर्शन करती रहें।

compiled and created by Bhartesh Mishra

परिचय

1	जे० एम० मैगी	संयुक्त निदेशक, उद्योग और वाणिज्य विभाग, जम्मू और कश्मीर; कश्मीरी कलाएं और दस्तकारी के विषयों में विशेषज्ञ ।
2	कुसुम बंसल	अनुसंधान सहायक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली ।
3	एफ० एम० हसनैन	इतिहास के प्रोफेसर; पुरातत्व विभाग के निदेशक और 'बुद्धिइज्म इन काश्मीर एण्ड लद्दाख' पुस्तक के लेखक तथा इतिहास विषयों में विशेषज्ञ ।
4	चरणजीत राय शर्मा	अनुवादक, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, के० - 76, हाउजखास, नई दिल्ली ।
5	शर्ले बेरी आईजन बर्ग (श्रीमती आर्टर आईजनबर्ग)	अमेरिकी सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की नृविज्ञान की विशेषज्ञ; "दक्षिण भारत की महिलाओं के व्यवसाय और सामाजिक स्थान में परिवर्तन"—विषय पर शोध कार्य; 'विंडो आन इण्डिया' की लेखिका तथा भारतीय दस्तकारी में विशेष रुचि रखने वाली महिला ।
6	कमला कुमारी :	अनुवादक, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, के० 76, हाउजखास, नई दिल्ली ।
7	माधवी यासीन (श्रीमती)	'दी एडमिनिस्ट्रेशन आफ लार्ड लैन्सडाउन' पर पीएच० डी० उपाधि के लिए शोध-कार्य, इतिहास विषय की विशेषज्ञ, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, शशीभूषण डिग्री कालेज, लखनऊ (1959-65); वरिष्ठ लेक्चरर, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर ।
8	किरण शर्मा	अनुवादक, बी० 13/37, देवनगर, दिल्ली-5 ।
9	प्रेमनाथ बजाज	'वितास्ता', 'हमदर्द' और 'वाइस आफ कश्मीर' पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, 'इन साइड कश्मीर', 'दी हिस्टरी आफ स्ट्रगल फार फ्रीडम इन कश्मीर', 'कश्मीर इन कूशेबल', 'डाटर आफ दी वितास्ता' और 'विदर इण्डिया आफटर इंडफ्रेंस' आदि पुस्तकों के लेखक ।
10	प्रेम दास	अनुसंधान सहायक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली ।
11	गुलाम नबी फिराक	कवि, लेखक और लेक्चरर, कश्मीर राज्य के शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के मर्मज्ञ, अंग्रेजी और उर्दू भाषा में विभिन्न विषयों के अनुभवी लेखक ।
12	ईश्वरचन्द आर्य	अनुवादक, सेक्टर 1/922, रामकृष्णापुरम्, नई दिल्ली-22 ।
13	गुलाम रसूलनजकी	तालीम-ए-जदीद, आलगुफेन, अंजुमन आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक; कश्मीर राज्य के मशहूर शायर ।
14	ओम प्रकाश तलवाड़	वरिष्ठ अनुवादक, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, के० 76, हौजखास, नई दिल्ली ।
15	बी० आर० खजूरिया	क्यूरेटर, डोगरा आर्ट गैलरी, जम्मू; पहाड़ी चित्रकलाओं के विशेषज्ञ एवं प्रसिद्ध चित्रकार ।
16	भगत सिंह :	सहायक निदेशक, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, के० 76, हाउजखास, नई दिल्ली ।
17	दयानन्द पंत	सम्पादक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली ।

compiled and created by Bhartesh Mishra

रजिस्टर्ड संख्या 6724/59

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित, 1973

compiled and created by Bhartesh Mishra